पाठ 3

पुरापाषाण तथा मध्यपाषाणकालीन संस्कृतियाँ

पाठ्य-रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 दक्षिण एशिया में मानव-उद्भव

3.3 पुरापाषाण काल

3.3.1 पूर्व-पुरापाषाण काल

3.3.2 मध्य-पुरापाषाण काल

3.3.3 उत्तर-पुरापाषाण काल

3.3.4 पुरापाषाणकालीन संस्कृति

3.4 मध्यपाषाण काल

3.4.1 मध्यपाषाणकालीन स्थल और औज़ार

3.4.2 जीविका शैली

3.4.3 मध्यपाषाणकालीन संस्कृति

3.5 सारांश

3.0 उद्देश्य

- इस पाठ का अध्ययन आपको निम्नलिखित विषयों में सक्षम बनाता है:
- दक्षिण एशिया में मानव विकास स्थलों की पहचान
- पाषाण काल के क्रमिक विकास और संस्कृति की व्याख्या
- मध्यपाषाणकालीन संस्कृतियों की मुख्य विशेषताओं के वर्णन
- पुरा और मध्यपाषाणकालीन जीविका शैली और औज़ारों की समझ
- वर्तमान में रोजमर्रा की ज़िंदगी में प्रागैतिहासिक कला की पहचान

3.1 प्रस्तावना

इस पाठ में हम उस युग का अध्ययन करेंगे जो मनुष्य के अतीत के आरंभ तक फैला हुआ है। इस दौरान आप पाएंगे कि मानव का जैव-सांस्कृतिक विकास हुआ है। मनुष्य विभिन्न भौतिक वातावरण में सफलतापूर्वक अनुकूल होने में सक्षम था और साथ ही वह विश्व के अन्य भूभाग की तरफ़ बढ़ रहा था। अतीत में इस युग को सिर्फ पाषाण काल के नाम से

जाना जाता रहा क्योंकि इस काल के मानव ने अपने हथियार मुख्यतः पत्थरों से ही विकसित किए। वर्तमान में हम इस युग का अध्ययन तीन भागों- पुरापाषाण काल, मध्यपाषाण काल और नवपाषाण काल के तहत करते हैं।

पाषाण युग को निम्नलिखित के आधार पर कई कालों में बांटा गया है:

- जलवायु की परिस्थितियाँ और विद्यमान वनस्पति व जीव प्रजाति
- समुदाय के लोगों द्वारा नियोजित जीविका शैली- आखेटक, संग्राहक या अन्न-उत्पादक अवस्था
- पत्थर से बने औज़ारों के आकार-प्रकार

पुरापाषाण और मध्यपाषाण काल सामाजिक विकास के आखेटक-संग्राहक अवस्था को दर्शाते हैं। स्मरण रहे, प्रागैतिहासिक काल को इतिहास के पूर्व का युग कहा जाता है क्योंकि उस समय लेखन-पद्धति विकसित नहीं हुई थी। इस युग के दर्ज इतिहास का साक्ष्य हमें पुरातत्त्व और नृविज्ञान (Anthropology, मनुष्य जाति के विकास का विज्ञान) से मिलता है। आइये अब हम विस्तार से पुरापाषाण और मध्यपाषाण काल को समझने की कोशिश करते हैं।

3.2 दक्षिण एशिया में मानव-उद्भव

भारतीय उपमहाद्वीप की आर्द्र जलवायु के फलस्वरूप जैविक सामग्री का त्वरित और आसान अपघटन काफी लंबे समय तक विश्व जीवाश्म मानचित्र पर भारत की अनुपस्थिति का कारण बना। अब यह एक निर्विवाद तथ्य है कि मानव प्रजाति की उत्पत्ति अफ़्रीक़ा में हुई, जबकि भारत में प्रारंभिक होमिनिड पूर्वजों का सबूत भ्रामक ही रहा है। 1930 के दशक में पंजाब में शिवालिक की तलहटी से एक प्रारंभिक मानव प्रजाति (Ramapithecus) की खोज हुई। मानव मूल संबंधी प्रत्यक्ष निर्णायक सबूत 1984 में ही सामने आ पाए जब अरुण सोनकिया के नेतृत्व वाली भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण टीम को मध्यप्रदेश में हशंगाबाद के निकट हथनौरा से एक महिला के अनावृत मस्तिष्क-जीवाश्म प्राप्त हुए जिसके कपाल का आकार 1155 से 1421 घन सेंटीमीटर था। इस जीवाश्म की पहचान एक विकसित अथवा संक्रमण कालीन मानव अर्थात होमो सेपियन्स के रूप में की गई है। (चक्रबर्ती 2006: 11-12)।

3.3 पुरापाषाण काल

पुरापाषाण काल का आशय प्राचीन प्रस्तर युग से है (पुरा का अर्थ है- पुराना और पाषाण का अर्थ है- पत्थर या प्रस्तर)। इसका काल 25 लाख ईसा-पूर्व से 10 हज़ार ईसा-पूर्व तक माना गया है। यह मानव इतिहास की सबसे लंबी काल-अवधि है। आरंभिक मनुष्य पत्थरों का ही तरह-तरह से इस्तेमाल करते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया उन्होंने इसमें नवाचार (innovation) लाया। पुरापाषाणकालीन संस्कृति का ताल्लुक प्रातिनूतन (Pleistocene) भूगर्भीय युग से है। इसे प्रमुख शिल्प-तथ्य (artefact) के आकार, आकृति और निर्माण-विधि के आधार पर मुख्यतः तीन भागों में बांटा गया है।

पुरा-पुरापाषाण काल (भारतीय परिप्रेक्ष्य में लगभग 20 लाख ईसा पूर्व से 1 लाख ईसा पूर्व तक) का मुख्य अभिलक्षण प्रस्तर या मुख्य पत्थर से बने औज़ार जैसे हस्त कुठार (hand axe), विदारणी (cleavers), खंडक औज़ार (chopping tools) इत्यादि से संबंधित शिल्प-तथ्य हैं।

मध्य-पुरापाषाण काल (1 लाख ईसा पूर्व से 40 हज़ार ईसा पूर्व तक) का मुख्य अभिलक्षण प्रस्तर या मुख्य पत्थर से बने अपेक्षाकृत छोटे-हलके औज़ार हैं, जिन्हें उन्नत तकनीक यथा- लेवाल्लोईस तकनीकी (Levallois technique) द्वारा बड़ी सावधानी पूर्वक तैयार किया जाता था।

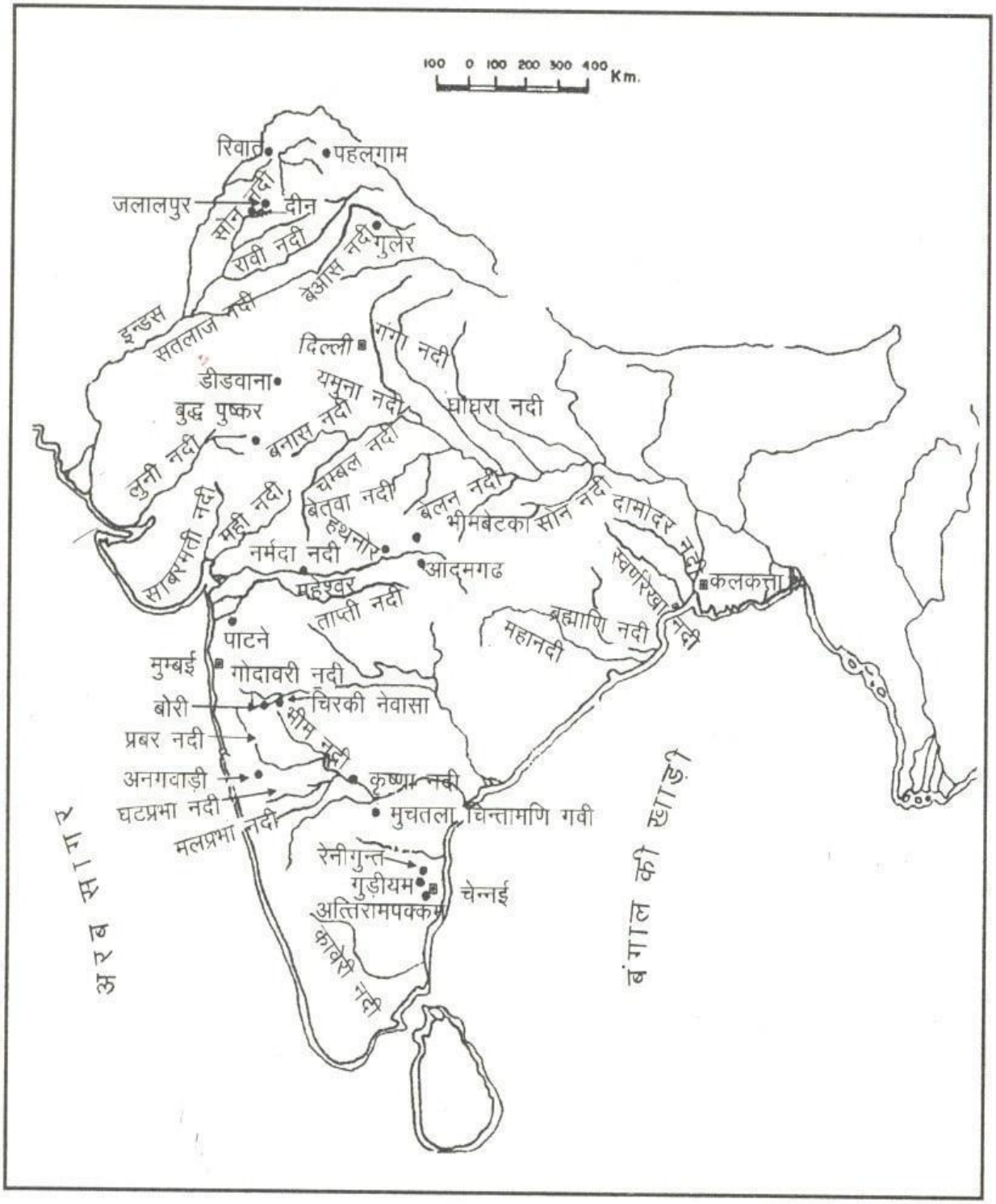

पुरापाषाण काल के प्रमुख स्थल

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास,* 2008)

उत्तर-पुरापाषाण काल (40 हज़ार ईसा पूर्व से 10 हज़ार ईसा पूर्व तक) का निर्धारण अपेक्षाकृत हलके शिल्प-तथ्य और समांतर पार्श्व वाले फलक (blade) और तक्षणी (burin) के आधार पर किया गया है।

राबर्ट ब्रूस फूट ने 1863 में प्रथम पुरापाषाण काल के औज़ारों की खोज कर भारत में प्रागैतिहास के विज्ञान की स्थापना की। इसके बाद धीरे-धीरे अगले दो दशकों में दक्षिणी प्रायद्वीप में अनेक प्रागैतिहासिक स्थलों की सूचना मिली। लेकिन 1930 के दशक में जब एच.डी. बटेरा और टी.टी. पैटर्सन ने कश्मीर, पोटवार और जम्मू क्षेत्रों का विस्तृत सर्वेक्षण आरंभ किया तब जाकर प्रागैतिहासिक अनुसंधान को महत्ता प्राप्त हुई और अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओं ने नए प्रागैतिहासिक स्थलों की खोज, सांस्कृतिक महत्व का निर्धारण और पुरा-पर्यावरणों के पुनर्निर्माण पर अपना ध्यान केंद्रित करना शुरू किया। 1960 के दशक तक भारतीय प्रागैतिहासकार हिम-युग के उद्योगों (Industry) को मुख्य शिल्प-तथ्य के नमूनों के निर्माण के आकार, विस्तार और तरीकों के आधार पर पूर्व, मध्य तथा उत्तर पुरापाषाण काल में विश्वासपूर्वक विभाजित कर सकते थे।

3.3.1 पूर्व-पुरापाषाण काल

पूर्व-पुरापाषाण काल में हस्त कुठारों, विदारणियों, खंडक उपकरणों और संबंधित शिल्प-रूपों का इस्तेमाल किया जाता था। किसी शिलाखंड अथवा प्रस्तर के भीतरी भाग को हटाकर ही सारे उपकरणों को अपेक्षित आकार और विस्तार दिया जाता था।

महाराष्ट्र में बोरी आरंभिक पूर्व-पुरापाषाण काल का स्थल माना जाता है। पूर्व-पुरापाषाण काल के प्रस्तर के उपकरण सोहनघाटी (अब पाकिस्तान में) और कश्मीर तथा थार रेगिस्तान के कई स्थलों में भी पाए गए हैं। इन्हें सोहानी उद्योग (Soanian Industry) कहा जाता था (जबकि शेष भारत के अधिकांश स्थलों पर पाए गए शिल्प-तथ्य (Artefact) अस्युलियन (Acheulian) अथवा 'मद्रासी' कहलाते हैं) जिनमें बटिकाश्म अथवा मुख्य प्रस्तर उपकरणों (core tools) की प्रधानता थी और यह मुख्य रूप से गँड़ासो एवं खंडक औज़ारों (Chopper) के उपयोग का युग था। अस्युलियन उद्योगों में मुख्यतः दूमुखी शल्कित शिल्प-तथ्य हस्त कुठारों तथा विदारणियों के साथ-साथ दंतिकाओं, खुरचनियों, गोलाभों और गैंतियों का उपयोग होता था। अस्युलियन शिल्प-तथ्य प्रायः कठोर और टिकाऊ क्वार्टसाईट (स्फटिक) से बने होते थे। कर्नाटक के हंस्गी घाटी में चूना-पत्थर का उपयोग किया जाता था। मध्य भारत में ललितपुर में गुलाबी ग्रेनाइट का चलन था जबकि महाराष्ट्र और मध्य भारत के कुछ हिस्सों में बैसाल्ट (असिताश्म) को तरजीह दी जाती थी। उत्तर प्रदेश में बेलान घाटी, राजस्थान के डिडवान के मरुस्थलीय क्षेत्र, महाराष्ट्र के चिर्की-नेवासा, आंध्र-प्रदेश का नागार्जुनकोंडा पूर्व-पुरापाषाण युग के उपकरण उपलब्ध कराने वाले कुछ महत्वपूर्ण स्थलों में शामिल हैं। भोपाल के निकट भीमबेटका की गुफाएं और शैलाश्रय भी पूर्व-पुरापाषाण युग के लक्षण दर्शाते हैं। उपमहाद्वीप के सभी भागों में पाए गए पूर्व-पुरापाषाण युग के शिल्प-तथ्यों में अधिकांश क्वार्टजाइट से बने हैं।

ताप्ती, गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियों की घाटियों से बड़ी संख्या में पूर्व-पुरापाषाणयुगीन स्थल प्राप्त हुए हैं। पूर्व-पुरापाषाणयुगीन स्थलों का वितरण भू-क्षरणीय लक्षणों, मिट्टी के स्वरूप इत्यादि पारिस्थितिकी परिवर्तन से जुड़े हैं। ताप्ती की द्रोणिका गहरी काली मिट्टी की है और शेष क्षेत्र अधिकांशतः मध्यम दर्जे की काली मिट्टी से आच्छादित हैं। भीमा और कृष्णा के ऊपरी विस्तार में पूर्व-पुरापाषाणयुगीन स्थलों का अभाव है। कृष्णा नदी की मालप्रभा, घाटप्रभा और सहायक नदियों से बड़ी संख्या में पूर्व-पुरापाषाण युग के स्थलों की जानकारी मिली है। कर्नाटक में घाटप्रभा की घाटी में बड़ी संख्या में अस्युलियन हस्तकुठार पाए गए हैं। घाटप्रभा पर अनगवाड़ी और बागालकोट दो अति महत्वपूर्ण स्थल हैं जहाँ आरंभिक और मध्य पुरापाषाणयुगीन औज़ार पाए गए हैं। तमिलनाडु में पलार, पेनिनयार और कावेरी नदियां पुरापाषाणीय उपकरणों से भरी पड़ी हैं। तमिलनाडु में अत्तिरंपक्कम और गुडियम से आरंभिक और मध्य-पुरापाषाण दोनों युगों के हस्त कुठार, शल्क, पत्ती, खश्चनी इत्यादि शिल्प-तथ्य प्राप्त हुए हैं।

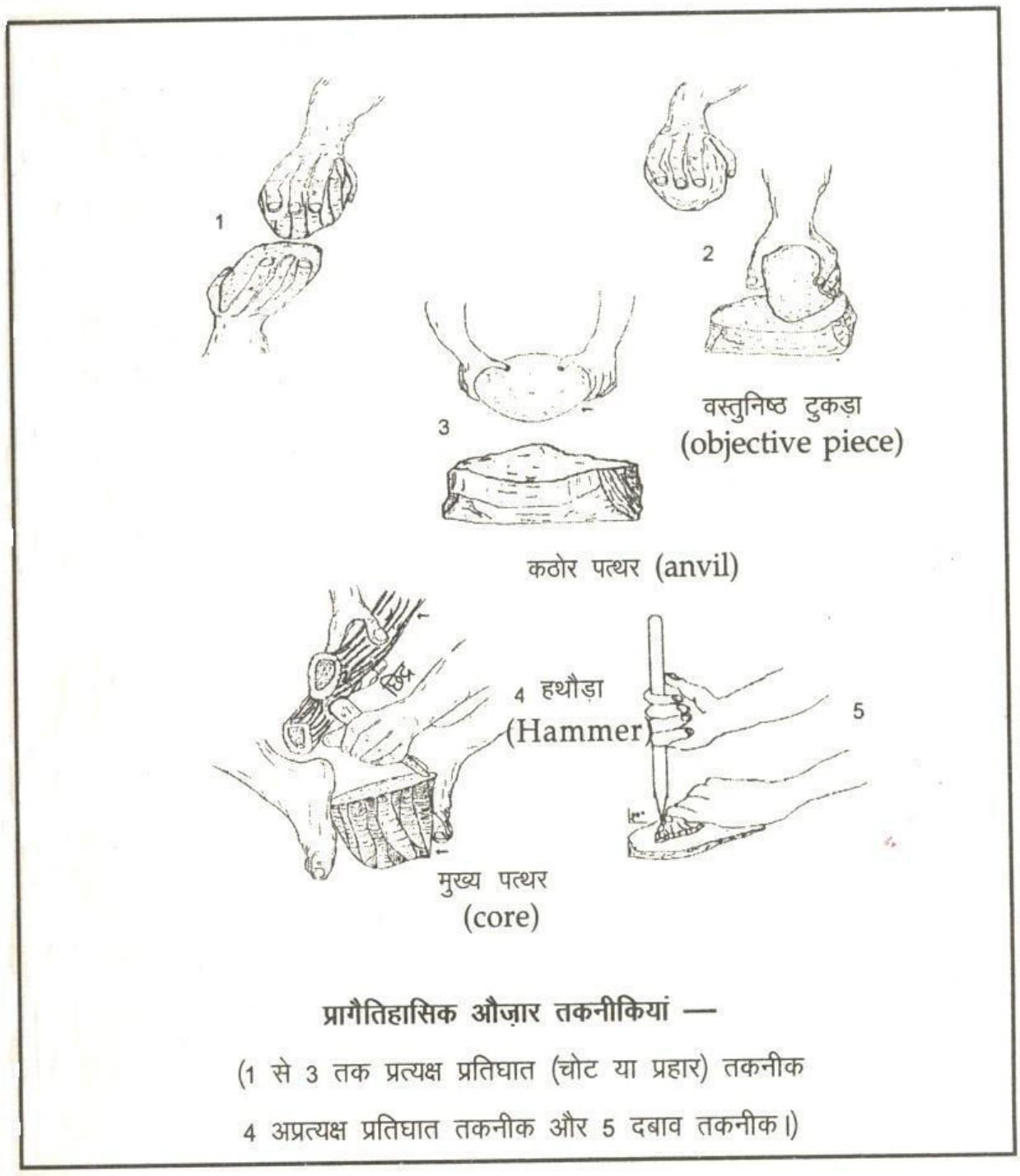

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास*, 2008)

3.3.3 मध्य-पुरापाषाण युग

मध्य-पुरापाषाण युग के उद्योगों में मुख्य पत्थर (core) से लिए गए शल्क-आधारित अपेक्षाकृत छोटे और हलके औज़ारों का उपयोग होता था जिनमें कुछ बड़ी बारीकी से गढ़े गए हैं। सेवालाई और चक्रीय कोर प्रविधियों में बढ़ोतरी हुई। अधिकांश क्षेत्रों में क्वार्टसाइट का उपयोग होता रहा और पूर्व-पुरापाषाण काल के घटक मध्य-पुरापाषाण युग में भी जारी रहे।

फिर भी, अब चर्ट और सूर्यकांत (जैस्पर) जैसे महीन कण वाले सिलिसस शैल को उपकरण-निर्माण में तरजीह दी जाने लगी और कच्चे माल कई किलोमीटर तक ले जाए जाने लगे। मध्य-पुरापाषाण युग के होमिनिड (Hominids, आदि या लघु मानव जिससे आज का मानव विकसित हुआ है) पूर्व-पुरापाषाण युग के दौरान आबाद क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर बसे रहे। लेकिन, भारत के कुछ हिस्सों जैसे तमिलनाडु में पहली शैलाश्रयों में निवास शुरू हुआ। मध्य-पुरापाषाण युग के शिल्प-तथ्य नर्मदा नदी के तट पर कई स्थानों पर और तुंगभद्रा नदी के दक्षिण में भी कई स्थलों पर पाए गए हैं। बेलान घाटी (उत्तर प्रदेश) जो विंध्य पर्वत के पादगिरि पर अवस्थित है, में भारी मात्रा में पशुओं और मृगों समेत अनेक प्राणियों के जीवाश्म और पत्थर के औज़ार प्राप्त हुए हैं जिनका संबंध पूर्व और मध्य पाषाण युग दोनों से है।

मेवाड़ में वागाँव और काडमाली नदियों के किनारे मध्य-पुरापाषाणयुगीन अनेक स्थल पाए गए हैं। इस क्षेत्र में विविध प्रकार के खुरचनियों, बेधकों और कांटों की खोज की गयी है। ओसैंड घाटी के निकट भंडारपुर और नेवासा के निकट चिर्की से मध्य-पुरापाषाण युग की शिल्प सामग्रियों की जानकारी मिली है। भीमबेटका में अस्युलियन परंपरा वाले उपकरणों का स्थान आगे चलकर मध्य-पुरापाषाणयुगीन संस्कृति ने ले लिया। कुल मिलाकर पहाड़ी ढालू सतहों पर सरिताओं के समानांतर बाहरी स्थलों, स्थायी टीलों की ऊपरी परतों और शैलाश्रयों का उपयोग जारी रहा जैसा कि आज के पाकिस्तान में संघाओ गुफा, राजस्थान में लूनी नदी घाटी, डिडवाना, चंबल, नर्मदा, सोन और कोटील्लायर नदी की घाटियों, पूर्वी भारत के पठारों और दक्षिण में हुँस्गी घाटी की खोजों से जाहिर होता है। इस काल की तिथियाँ आज से 1,50,000 से 30,000 वर्ष पूर्व तक फैली हैं। यह काल सामान्यतः शुष्कता का काल है।

इस उपमहाद्वीप में संभवतः सर्वाधिक विलक्षण मध्य-पुरापाषाणयुगीन स्थल समूह ऊपरी सिंध की रोहड़ी पहाड़ियां हैं। इस काल का उद्योग चर्ट के वृहत पिंडों पर आधारित है और ये पिंड शिखर पर चूना-पत्थर से ढकी चौरस पहाड़ियों के शीर्ष पर विराजमान हैं। चर्ट के इस व्यापक विस्तार का उपयोग बड़े पैमाने पर मध्य और उत्तर-पुरापाषाण कालों में और फिर पाषाण-कांस्यकाल में किया गया, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः जलवायु-विषयक कारणों से पूर्व-पुरापाषाण काल और पुन: मध्य-पुरापाषाण काल में इनकी भारी उपेक्षा हुई। क्वार्टजाइट बोल्डर्स (गोलाश्मों), कोबल्स (लघु गोलाश्मों) और बाटिकाश्मों के व्यापक विस्तार का उपयोग उत्तरी पंजाब के पोटवार क्षेत्र में मध्य और उत्तर पुरा-पाषाणयुगीन उपकरण निर्माताओं द्वारा किया गया।

3.3.3 उत्तर-पुरापाषाण युग

प्रातिनूतन युग के अंत में, लगभग 30,000 वर्ष पूर्व उपकरण के स्वरूप और प्रौद्योगिकी में एक निश्चित बदलाव आया जिसको या तो आखेट के तरीके में परिवर्तन अथवा संसाधनों के अधिक सामान्य उपयोग, अथवा पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया से जोड़ा जा सकता है। सावधनीपूर्वक बनाए गए कोर से समानांतर पार्श्वों वाली पत्तियों के निर्माण की प्रविधि उपमहाद्वीप के सारे उत्तर-पुरापाषाण युग के उद्योगों का एक अनिवार्य बुनियादी तत्त्व है, जो शुष्कता के अंतिम दौर का समसामयिक है। शिल्प-तथ्य प्रारूपों में खुश्चनियों, पृष्ठाधानित पत्तियों, कांटो, गंडासों और तक्षणियों की विस्तृत श्रेणियां शामिल हैं और अब पत्ती, प्रौद्योगिकी और संयोजन-संरचना में क्षेत्रीय बदलावों की स्पष्ट पहचान संभव है। पहली बार कुर्नूल के चुर्ण-प्रस्तर में अस्थि-उपकरण दृष्टिगोचर होते हैं।

यद्यपि शुष्कता के कारण राजस्थान के भीतरी बालूका स्तूपों में अधिवास में रूकावट आई, अन्यत्र उत्तर-पुरापाषाणकालीन स्थलों की भरमार है। कच्ची सामग्रियों के बड़े पैमाने पर उपकरण बनाये जाते थे अधिकांशतः लंबी किन्तु क्षीण पत्तियों वाले होते थे। बारीक कणों वाले चर्ट और कैल्सीडन के लंबी दूरी के यातायात के व्यापक साक्ष्य उपलब्ध हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि उत्तर-पुरापाषाणकालीन समुदायों में आदान-प्रदान जारी था और वे लंबी दूरियां

तय करते थे। इस काल की मुख्य पहचान अपेक्षाकृत हलके शिल्प-तथ्य और समांतर पार्श्व वाले फलक (blade) और तक्षणी (burin) हैं।

उत्तर-पुरापाषाणयुगीन शिल्प-तथ्य की मौजूदगी की सूचना जिन स्थानों से मिली है उनमें प्रमुख हैं- थार क्षेत्र (यद्यपि मध्य-पुरापाषाण युग की अपेक्षा वे अधिक बिखरे रूप में हैं), पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की संघाओ गुफाएँ और उत्तरी पंजाब का पोटवार पठार (दोनों पाकिस्तान में), दक्षिण भारत, मध्य गुजरात और उत्तर-पश्चिमी काठियावाड़। आंध्र प्रदेश के चित्तूर जिले में रेनिगुंटा के निकट उत्तर-पुरापाषाणकालीन पत्रियों और तक्षणियों का उद्योग भी पाया गया है।

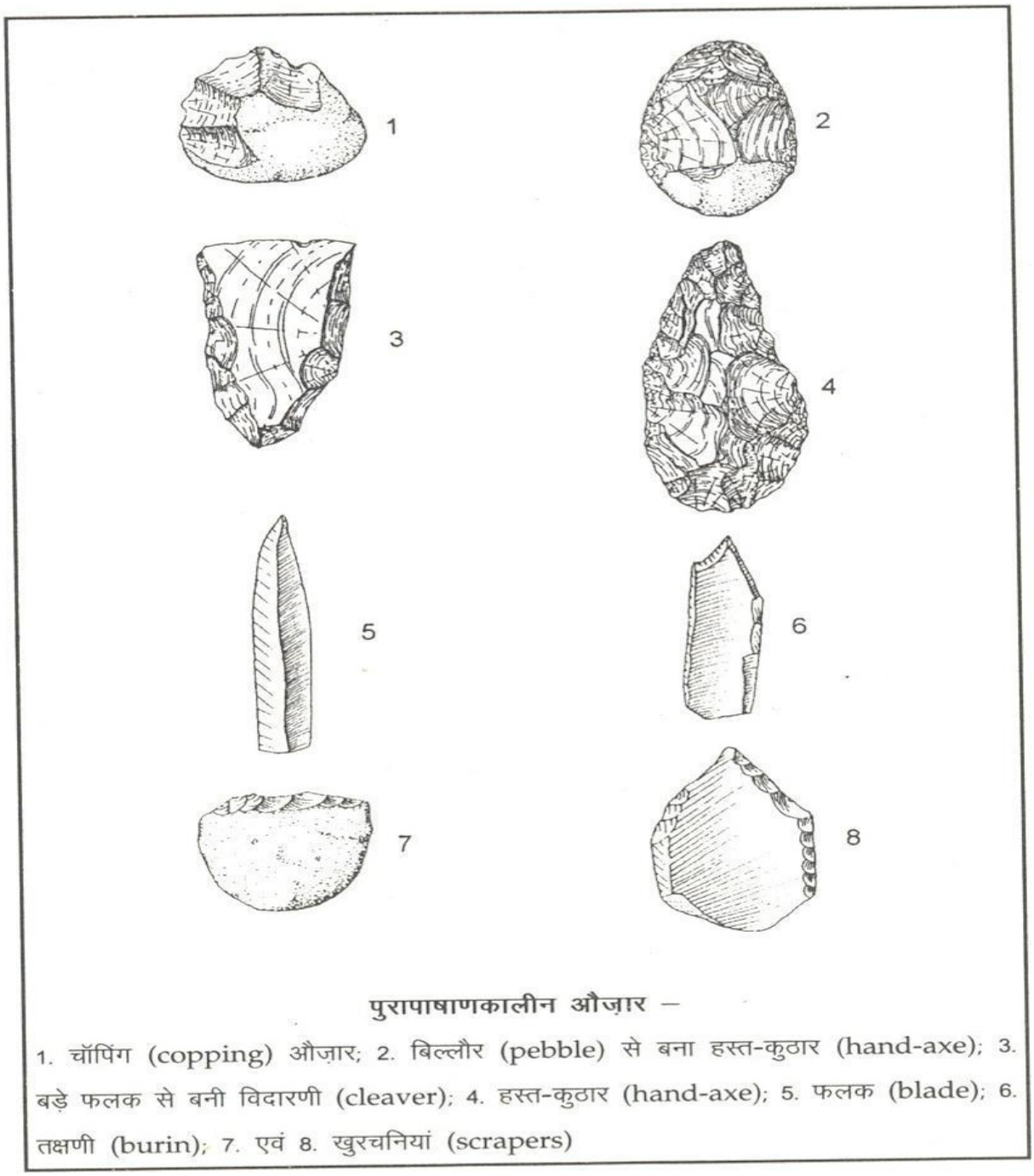

पुरापाषाणकालीन औज़ार –

1. चॉपिंग (copping) औज़ार; 2. बिल्लौर (pebble) से बना हस्त-कुठार (hand-axe); 3. बड़े फलक से बनी विदारणी (cleaver); 4. हस्त-कुठार (hand-axe); 5. फलक (blade); 6. तक्षणी (burin); 7. एवं 8. खुरचनियां (scrapers)

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास*, 2008)

3.3.4 पुरापाषाणकालीन संस्कृति

पुरापाषाणकालीन जीव-जंतुओं के अवशेषों से प्रतीत होता है कि लोग शिकार करने और संग्रह करने के दौर में थे। उस युग के लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए बैल, गवल, नीलगाय, चिंकारा, ग़ज़ेल (छोटा सुंदर हिरण), काला नर हरिणा, ऐंटिलोप (चौसिंगा हिरण), सांभर, चितकबरा हिरण, जंगली भालू, अनेक प्रकार के पक्षी, कछुआ, मछली शहद इत्यादि और पौधें से प्राप्त आहार जैसे फल, कन्द, बीज और पत्तियों पर निर्भर थे। भीमबेटका में पाई गयी चित्रकारियों और नक्काशियों से जाहिर होता है कि आखेट उनके निर्वाह का मुख्य साधन था। भीमबेटका की आरंभिक चित्रकारियाँ उत्तर-पुरापाषाण युग की हैं जब लोग छोटे-छोटे समूहों में रहा करते थे।

प्रगति जाँच अभ्यास-1

क. रिक्त स्थान भरें:

(i) ..... ने 1863 में प्रथम पुरापाषाण काल के औज़ारों की खोज कर भारत में प्रागैतिहास के विज्ञान की स्थापना की।

(ii) पुरापाषाण काल संस्कृति का संबंध ..... भूगर्भीय परत निर्माण काल से है।

(iii) ..... उद्योगों की पहचान मुख्यतः शल्कित दुमुखी शिल्प-तथ्य जैसे हस्त कुठार, विदारानियों, खुर्चानियों, गोलाभों, गैन्तियों इत्यादि औज़ारों से होती है।

(iv) .....का निर्धारण हस्त कुठार, विदारणी, खंदक औज़ार और संबंधित शिल्प-तथ्य द्वारा किया जाता है।

(v) .....का निर्धारण अपेक्षाकृत हलके शिल्प-तथ्य और समांतर पार्श्व वाले फलक और तक्षणी के आधार पर किया गया है।

(vi) पुरापाषाणकालीन जीव-जंतुओं के अवशेषों से प्रतीत होता है कि लोग ..... के दौर में थे।

3.4 मध्यपाषाण युग

उपमहाद्वीपों में अद्यतन युग (Holocene, लगभग 9000 वर्ष ईसा पूर्व) के मध्यपाषाण काल तथा अन्य पत्थर उद्योग पाषाण युगों की विकासात्मक प्रक्रिया में अतिरिक्त योगदान को दर्शाते हैं। जलवायु में परिवर्तन (जो उष्ण और बरसाती हो गया) से पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं में बदलाव आया। शिकार करने और उसका संग्रह करने वाले समुदाय तेजी से भारत भर में फैल गए। आखेटकों, मछुआरों, पशुपालकों अथवा किसी न किसी रूप में कृषि कार्य से जुड़े लोगों की प्रतीत होने वाली संस्कृतियों से जुड़े लघुपाषाण-कालीन उद्योग पूरे उप-महाद्वीप में बड़े पैमाने पर पाए गए हैं।

3.4.1 मध्यपाषाणकालीन औज़ार और स्थल

लघुपाषाण अथवा छोटे-छोटे प्रस्तर खंडों के टुकड़ों से बने उपकरण (उनकी लंबाई 1 से 8 सेंटीमीटर तक थी) पत्रियों और अति लघु पत्रियों पर बनते थे और उनमें तक्षणी, अर्द्धचंद्रक, बालचंद्रक, त्रिकोण, नोकदार, समलंब इत्यादि कई आकार के होते थे जो बाद में अस्थिया-काष्ठ वाले दस्ते पर जड़ दिए जाते थे। मध्यपाषाण युग के ढेरों स्थल पाए गए हैं जैसे-राजस्थान (बागौड़, तिलवाड़ा इत्यादि), उत्तर प्रदेश (सराय नाहर राय, मोररहाना पहाड़, लेखहिया इत्यादि), मध्य भारत (भीमबेटका, आदमगढ़ इत्यादि), पूर्वी भारत (ओड़ीसा में कोचइ, पश्चिम बंगाल में वीरमानपुर, मेघालय के गारोहिल्स में से बालगिरि-2 इत्यादि) तथा कृष्णा नदी के दक्षिण (सनगनकाल्लु, रेनिगुंटा इत्यादि)। गुजरात के नर्मदा, माही और साबरमती की घाटी में लघुपाषाण काल के स्थलों का भारी जमावड़ा है।

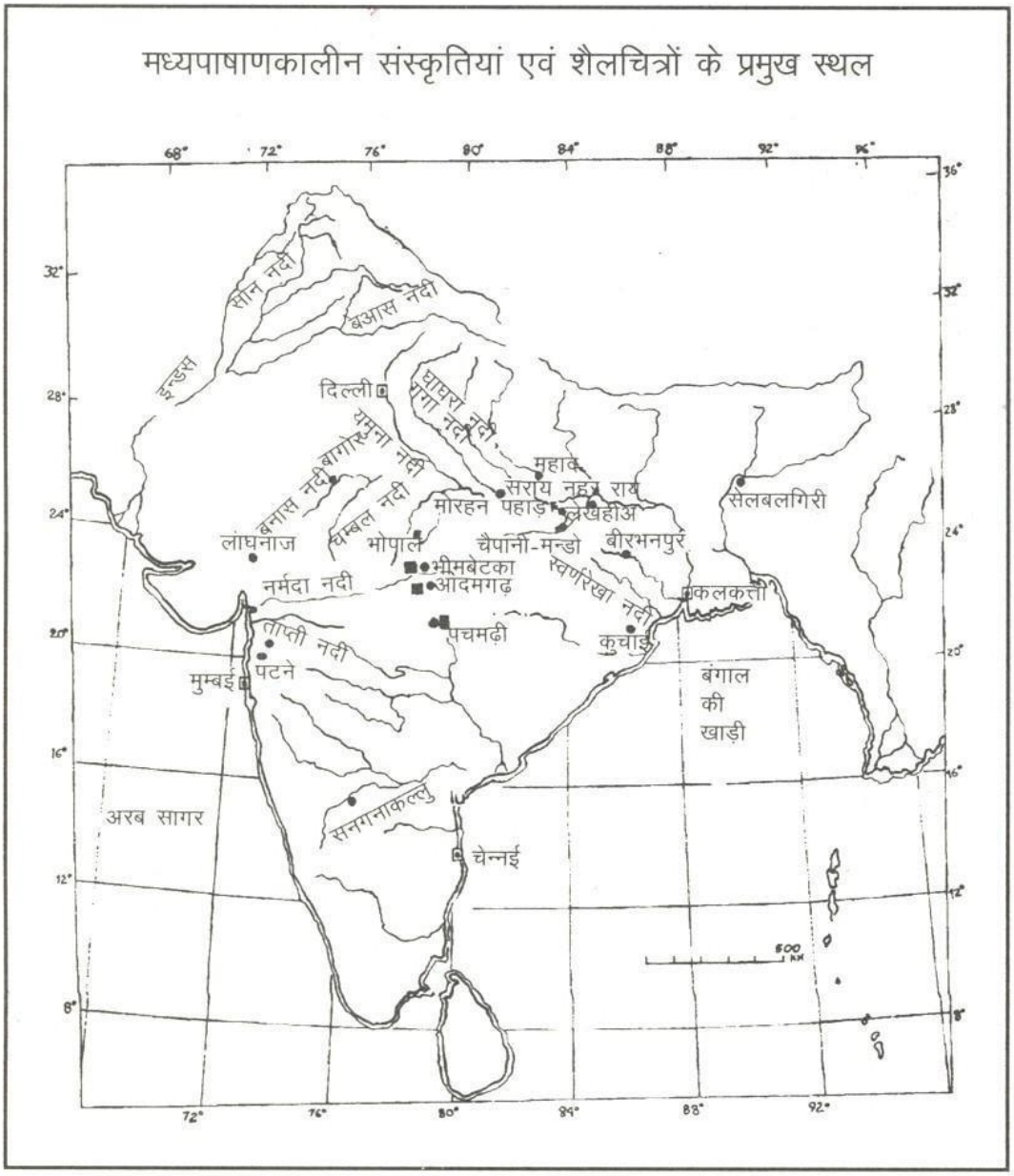

(स्रोत: वी.के. जैन, भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास, 2008)

3.4.2 जीविका शैली

आद्य उत्खनित स्थल लांघनाज तीन सांस्कृतिक चरणों को उजागर करता है। प्रथम चरण में लघुपाषाण वाले उपकरणों का निर्माण, शवाधान (Inhumation) और पशु-अस्थियाँ मिलती हैं। बाद के चरण में लेखहिया और बधई खोर के स्थलों पर मृणपाग दृषिटगोचर होते हैं। मवेशी, भेड़, बकरी, भैंस, सूअर, वराह, गवल, हाथी, हिरण, शृगाल, भेड़िया तथा बड़ी संख्या में जल-जंतुओं के अवशेष पाए गए हैं। चूंकि मध्यपाषाण युग पुरापाषाण युग और नवपाषाण युग के बीच संक्रमण के दौर को चिह्नित करता है अतः इस युग में पारिवारिक जीवन की ओर बढ़ते कदम की शुरूआत पाते हैं। बागौड़ (राजस्थान) में पालतू भेड़ और छागों की अस्थियाँ ईसा पूर्व 5वीं सदी की बतलाई जाती हैं। मुख्यतः आहार की प्राप्ति आखेट से ही होती थी लेकिन इस युग के लोग कंद-मूल, फल, शहद इत्यादि का भी संग्रह करते थे।

भीमबेटका, आदमगढ़, प्रतापगढ़ और मिर्जापुर में प्राप्त कला और चित्रकारियों से हम मध्यपाषाण युग के सामाजिक जीवन और आर्थिक गतिविधियों का अनुमान लगा सकते हैं। मध्यपाषाण काल के शैलचित्र आखेट करते, पौधों को चुनते, जानवरों को फँसाते, साथ बैठकर खाते, नाचते और बाजे बजाते लोगों को दर्शाते हैं। इन चित्रकारियों के सबसे प्रमुख विषय हैं जानवर। अन्य विषय हैं- पशु के मस्तक के साथ मानवीय आकृतियाँ, वर्गाकार और आयताकार आकृतियां जो उत्कीर्ण रेखाओं से भरी हुई हैं और जिन्हें झोपड़ियाँ अथवा बाड़ों का सूचक माना जा सकता है। कुछ असामान्य घटनाओं की तस्वीरें भी हैं जैसे, मिर्जापुर के निकट मोरहाना पहाड़ पर शैलाश्रयों का समूह जिसमें भालों और धनुष-बाणों से लैस लोगों द्वारा रथों को घात लगाकर ले जाना। झंडे और मछली मारने तथा छोटे-मोटे अहेर के लिए भूरे रंग के जालदार फंदे ऐसी भौतिक संस्कृति की समृद्धि को उजागर करते हैं जिसका कोई निशान पुरातात्त्विक अभिलेखों में विद्यमान नहीं रह गया है।

भीमबेटका के शैल चित्र

(स्रोत: http://www.mid-day.com/articles/around-24-heritage-sites-in-rs-30000/15033041)

3.4.3 मध्यपाषाणकालीन संस्कृति

मध्यपाषाण युग ने नवपाषाण युग के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसमें पशुपालन और कृषि कर्म शिकारी-संग्रहकर्ता अवस्था वाले जीवन-निर्वाह के प्रचलित तरीके का संपूरक बन गया। भारतीय संदर्भ में तथाकथित मध्यपाषाणयुगीन संस्कृतियाँ और अब प्रकाश में आती सिंधु घाटी में कृषि आधारित व्यवस्था के कालक्रम अत्यंत समीप प्रतीत होते हैं लेकिन कुल मिलाकर मध्यपाषाणयुगीन संस्कृति मोटे तौर पर ईसा पूर्व 9000 से 4000 वर्ष तक महत्वपूर्ण रही।

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. सही गलत बताएँ:

(i) हस्त-कुठार, विदारणी, चॉपिंग औज़ार इत्यादि मध्यपाषाणकालीन औज़ार थे।

(ii) मध्यपाषाणकालीन शैल-चित्रकारी में लोगों द्वारा शिकार-क्रीड़ा, खाद्य संसाधनों का संग्रहण, साथ-साथ खाना, नाचना-गाना-बजाना इत्यादि प्रदर्शित होते हैं।

(iii) गुजरात के नर्मदा, माही और साबरमती की घाटी में लघुपाषाण काल के स्थलों का भारी जमावड़ा है।

(iv) भीमबेटका, आदमगढ़, प्रतापगढ़, मिर्जापुर इत्यादि मध्यपाषाणयुगीन कला व चित्रकारी से समृद्ध स्थल हैं।

(v) मध्यपाषाणयुगीन संस्कृति ने पुरापाषाणकालीन संस्कृति के लिए मार्ग प्रशस्त किए।

3.5 सारांश

- पुरापाषाण और मध्यपाषाण काल सामाजिक विकास के आखेटक-संग्राहक अवस्था को दर्शाते हैं।
- पुरापाषाण काल का संबंध प्रातिनूतन युग से है। इस युग की संस्कृतियों को मुख्य शिल्प-तथ्य की आकृति, आकर और निर्माण प्रक्रिया के आधार पर तीन प्रमुख भागों- पूर्व, मध्य और उत्तर पाषाण कालों में विभक्त किया जा सकता है।
- मध्यपाषाण काल की शुरुआत 8000 ईसा पूर्व से माना गया है। इसके प्रमुख अभिलक्षण हैं- लघुपाषाण हथियार और छोटे-छोटे प्रस्तर उपकरण जैसे तक्षणी, अर्द्धचंद्रक, बालचंद्रक, त्रिकोण, नोकदार, समलंब आकर की पत्रियाँ इत्यादि।
- प्रागैतिहासिक कला में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है।

प्रगति जाँच अभ्यास- 3

क. संक्षिप्त टिप्पणी:

(i) पूर्व-पुरापाषाण काल
(ii) मध्य-पुरापाषाण काल
(iii) उत्तर-पुरापाषाण काल
(iv) मध्यपाषाणकालीन स्थल और औज़ार

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न:

(i) भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में फैले कुछ महत्वपूर्ण उत्तर-पुरापाषाणकालीन उद्योग-स्थलों का संक्षेप में विवरण दें।

ग. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

(i) भारतीय उपमहाद्वीप की पुरापाषाण एवं मध्यपाषाणकालीन संस्कृतियों की मुख्य विशेषताओं का विवरण दें।

प्रगति जांच अभ्यासों के उत्तर

प्रगति जांच अभ्यास 1

क. (i) राबर्ट ब्रूस फूट (ii) प्रातिनूतन (iii) अस्युलियन (iv) पूर्व-पुरापाषाण काल (v) उत्तर- पुरापाषाण काल (vi) आखेट और संग्रहण

प्रगति जांच अभ्यास 2

क. (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) गलत

प्रगति जांच अभ्यास 3

क. संक्षिप्त टिप्पणी:

(i) देखें खंड 3.3.1 (ii) देखें खंड 3.3.2 (iii) देखें खंड 3.3.3 (iv) देखें खंड 3.4.1

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न:

(i) देखें खंड 3.3.3

ग. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

(i) देखें खंड 3.3 और 3.4

पाठ 4

खाद्योत्पादन का आरंभ

पाठ्य-रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 विश्व के संदर्भ में खाद्य-उत्पादन का महत्व-'नवपाषाण युग' के विशिष्ट लक्षण

4.2.1 नवपाषाण युग की अवधारणा और नवपाषाण क्रांति

4.3 भारत में कृषि के प्रारंभ का पुनर्विवेचन- विकीर्णवादी धारणा से स्वतंत्र विकास की ओर गमन और फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में खाद्य-उत्पादन

4.4 नवपाषाण संस्कृतियों का प्रादेशिक वितरण

4.4.1 उत्तर-पश्चिम भारत

4.4.2 उत्तर भारत

4.4.3 मध्य भारत

4.4.4 मध्य गंगा की घाटी

4.4.5 पूर्वी भारत

4.4.6 उत्तर-पूर्वी भारत

4.4.7 दक्षिण भारत

4.5 उपसंहार

4.6 सारांश

4.0 उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन आपको निम्नलिखित विषयों में सक्षम बनाता है:

- नवपाषाण युग के अभिलक्षणों की व्याख्या
- भारत के विभिन्न भागों में खाद्य-उत्पादन के विकास की समझ
- भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि-पद्धति की व्याख्या
- नवपाषाण संस्कृति के प्रादेशिक वितरण की पहचान

4.1 प्रस्तावना

नवपाषाण युग जो मध्यपाषाण युग के बाद की और पाषाण युग की अंतिम अवस्था है, में खाद्य-उत्पादन का श्रीगणेश हुआ। मानव जाति के प्रागैतिहास में इस बुनियादी और जीवन-शैली में परिवर्तन लाने वाले घटनाक्रम की शुरूआत पर

विद्वानों में लंबी बहस चली है- आखिर वह कौन-सा प्रेरक तत्त्व था जिसने विश्व के एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न भागों में रहने वाले मानव-समाजों को कृषि और पशु पालन की ओर मोड़ा? यद्यपि तीनों मत के संबंध में युक्तिसंगत परिकल्पनाएँ की गयी हैं, अब यह सामान्य रूप से स्वीकृत है कि यह रूपांतरण तीनों- होलोसीन के प्रारंभ में जलवायु परिवर्तन, आबादी का बढ़ता घनत्व और मानव-समूहों की विकसित होती हुई संस्कृति एवं प्रौद्योगिक रणनीति- के सम्मिश्रण का परिणाम था।

4.2 विश्व के संदर्भ में खाद्य-उत्पादन का महत्व- 'नवपाषाण युग' के विशिष्ट लक्षण

अतः नवपाषाण के बारे में ऐसा क्या है कि वह एक ही साथ पाषाण युग की अंतिम अवस्था भी है और सभी परवर्ती (बाद की) सभ्यताओं का आधार भी? यह पाषाण युग की संस्कृति है, यह तो इसी से सिद्ध होता है कि इसमें प्रस्तर के उपकरण उपयोग में लाए जाते थे। लेकिन यह भी सत्य है कि पुरापाषाण अथवा मध्यपाषाण युग में प्रयुक्त होने वाले अपेक्षाकृत हलके और तीक्ष्ण उपकरणों से भिन्न मूसल, खरल, चक्की जैसे कूटने-पीसने वाले भारी औज़ारों के साथ-साथ कुठार और हँसिया जैसे चमकदार औज़ार भी नवपाषाण युग में काम में लाए जाने लगे, क्योंकि इनसे जंगली अथवा घरेलू पौधों और घासों को काटने में मदद मिलती थी।

नवपाषाणकालीन लोग अपने पूर्ववर्तियों की तरह पत्थरों से निर्मित औज़ारों का इस्तेमाल करते थे लेकिन उनमें बहुत कम ही समानता थी। पुरापाषाण और मध्यपाषाण काल के मानव-प्राणी घुमंतू आखेटक एवं संग्रहकर्ता थे जो अपने आहार की तलाश में लंबी दूरियाँ तय करते थे। इसके विपरीत, नवपाषाण के निवासी पूरे विश्व में अपनी आहार संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए कृषि अथवा खाद्य-उत्पादन और पशु-पालन पर निर्भर करते थे। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि पूरे इतिहास में सभी वृहत्तम और जटिलतम सभ्यताएँ सिर्फ छह प्रकार की फ़सलों-गेहूँ, जौ, बाजरा, चावल, मक्का और आलू की खेती पर ही आधारित हैं और इन्हें 'सभ्यताओं के संवाहक' के नाम से जाना जाता है। नवपाषाण युग को पृथक करने वाली एक अन्य विशेषता है- स्थानबद्ध जीवन। आज से 10,000 से 3,500 वर्ष पूर्व के बीच में कभी पूरे विश्व में लोगों ने बिना किसी प्रत्यक्ष संपर्क के कृषक समुदायों के रूप में बसना शुरू किया और गांवों, कस्बों तथा अंत में नगरों का निर्माण संभव हुआ।

मिट्टी के बरतन और पहिये का उपयोग तथा आगे चलकर कताई, बुनाई और माल निर्माण जैसे शिल्पों का आविष्कार भी नवपाषाण युग को अनूठा बनाते हैं। अधिकांश नवपाषाणकालीन संस्कृतियाँ अमृत्तिका शिल्प युग (Aceramic Neolithic) की हैं, लेकिन शीघ्र ही चाक पर बने मृणपात्र (मृदभांड) के चिह्न मिलने लगते हैं। चाक के आविष्कार से चक्रण का विकास हुआ और कांस्य युग की सभ्यता के समय तक गाड़ियों में चक्के का उपयोग शुरू हो गया।

4.2.1 नवपाषायुग युग की अवधारणा और नवपाषाण क्रांति

इन्हीं विकासक्रमों को ध्यान में रखते हुए प्रागैतिहासविद गार्डन वी. चाइल्ड ने इस दौर को 'नव पाषाण क्रांति' की संज्ञा दी है। फिर भी, उनके आलोचकों ने 'क्रांति' पद को एक ऐसे आकस्मिक परिवर्तन का सूचक माना है जो प्रायः रक्तपात से भरा होता है जबकि नवपाषाण विकासक्रमों का क्रमिक प्रस्पुफटन, पाषाणयुग का चरमोत्कर्ष था। यद्यपि नवपाषाण युग के महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता, आज हम इसे आमतौर पर 'क्रांति' के बदले 'रूपांतरण' अथवा 'विकास' के रूप में देखते हैं।

चाइल्ड की परिकल्पना का दूसरे महत्वपूर्ण बिंदु से भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण के आगमन से सीधा संबंध है। उनकी यह मान्यता है कि कृषि की शुरूआत पहले-पहल सिर्फ एक 'लघु-केंद्रक क्षेत्र' (nuclear region)- मेसोपोटामिया के उर्वर वर्धमान (Fertile Crescent) अथवा पूरब के आस-पास कहीं हुई, जहाँ से यह विश्व के अन्य

भागों में फैल गयी अथवा फैला दी गयी। इस विकीर्णवादी (diffusionist) उदाहरण के अनुसार कृषि का 'विचार' यहाँ पैदा हुआ और इस मूल प्रदेश से निकट के अन्य क्षेत्रों में इसका विस्तार हो गया।

प्रगति जाँच अभ्यास 1

क. संक्षिप्त टिप्पणी:

(i) नवपाषाण काल के विशिष्ट अभिलक्षण

(ii) गॉर्डन चाइल्ड की परिकल्पना

4.3 भारत में कृषि के प्रारंभ का पुनर्विवेचन- विकीर्णवादी धारणा से स्वतंत्र विकास की ओर गमन और फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में खाद्य-उत्पादन

दीर्घ काल तक यह मान्यता बनी रही कि भारत ने खाद्य-उत्पादन का विचार अपने पश्चिमी पड़ोसी, मेसोपोटामिया से ईरानी अधित्यका के मार्ग होकर ग्रहण किया है। लेकिन आधुनिक, विशेषकर 1970 के दशक से इस विषय पर किए गए शोध से यह धारणा खंडित हो गयी है। अब यह आमतौर पर माना जाने लगा है कि भारत में कृषि बाहर से आयातित न होकर एक स्वतंत्र व देशज विकास का परिणाम थी। इसे एक विलक्षण संयोग ही कहा जाएगा कि तीन प्रमुख खाद्यानों के बारे में प्रमाणित कर दिया गया है कि वे भारतीय उपमहाद्वीप की ही उपज हैं। पाकिस्तान के मेहरगढ़ में मेसोपोटामिया के उर्वर वर्धमान (Fertile Crescent) स्थल के समकालीन ही गेहूँ और जौ की खोज भारत में उनके प्रसार की संभावना को खत्म कर देता है। इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश के कोल्डीहवा में चावल और दक्षिण भारत में मिलेट (ज्वार, बाजरा इत्यादि) के स्थलों की खोज ने इन दो फ़सलों के क्रमश: दक्षिण चीन और दक्षिण अफ्रीका से आयातित की मान्यता पर प्रश्न-चिह्न खड़ा कर दिया है।

भारत में खाद्य-उत्पादन का सिलसिला ईसा पूर्व 8वीं सहस्राब्दी से लगभग 1000 वर्ष ईसा पूर्व तक चलता रहा। 1842 में ही ली मेसूरी द्वारा कर्नाटक के रायचूर जिले में और बाद में 1867 में जॉन ल्यूबाक द्वारा ऊपरी असम की ब्रह्मपुत्र घाटी में एक नवपाषाणकालीन सेल्ट (celt, कुठार जैसे काटने का एक उपकरण) की खोज की गयी। सुविस्तृत अन्वेषणों एवं उत्खननों के परिणामस्वरूप अब उप-महादेश में नवपाषाण युग के फैलाव और स्वरूप प्रकाश में आए हैं। आर. एस. शर्मा सरीखे कुछ विद्वान नवपाषाणकालीन अधिवासियों के द्वारा उपयोग में लाए गए कुठारों के स्वरूप के आधार पर नवपाषाणकालीन अधिवासों (settlement) को तीन समूहों में बांटते हैं- उत्तर-पश्चिमी, उत्तर-पूर्वी और दक्षिणी (शर्मा 2005:59)। कुछ अन्य विद्वान-जैसे, वी. के. जैन-छह विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों का दावा करते हैं जिनमें प्रत्येक निजी विशिष्टताएं और कालक्रम वाले हैं। ये प्रदेश हैं- (i) उत्तर-पश्चिमी, अर्थात पाकिस्तान में बलूचिस्तान और उसके पास-पड़ोस के क्षेत्र (ईसा पूर्व 7वीं सहस्राब्दी से मध्य चौथी सहस्राब्दी तक), (ii) उत्तरी अर्थात कश्मीर घाटी (ईसा पूर्व 2500-1500, (iii) मध्य भारत अर्थात विंध्य प्रदेश, इलाहाबाद के दक्षिण (ईसा पूर्व 4000-1200), (iv) मध्य गंगा का कछार, अर्थात पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार (ईसा पूर्व 2000-1500), (v) पूर्वी भारत, अर्थात बंगाल, ओड़ीसा और असम, (Vi) प्रायद्वीपीय अथवा दक्षिण भारत, अर्थात आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु (ईसा पूर्व 2500-1500)।

उपरोक्त समय-विस्तार पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होगा कि भारत में नवपाषाण का दौर सर्वत्र एक ही समय में नहीं विकसित हुआ और न एक ही साथ समाप्त हुआ। वास्तव में, ऐसी अनेक नवपाषाण संस्कृतियाँ थी, जो तांबे का उपयोग करने वाली हड़प्पा सभ्यता के साथ-साथ विद्यमान थी (ईसा पूर्व 2600-1900 वर्ष)। विभिन्न समय-विस्तारों वाली इन संस्कृतियों में प्रादेशिक विविधताएँ परिलक्षित होती हैं। उदाहरणस्वरूप, उत्तर-पूर्वी प्रदेश में नवपाषाणयुगीन

औज़ार तो पाए गए हैं लेकिन पौधों की खेती का कोई प्रमाण अब तक नहीं मिला है। इसी प्रकार, जबकि अधिकांश नवपाषाणकालीन संस्कृतियाँ अपनी पूर्ववर्ती मध्यपाषाणकालीन संस्कृतियों से विकसित हुई, कश्मीर घाटी से अब तक कोई ऐसी सूचना नहीं मिल पाई है। हड्डियों से बने औज़ार कश्मीर के कुछ स्थलों और बिहार में चिरांद से प्राप्त हुए हैं और जहाँ तक अनाज के उपभोग का प्रश्न है, पाकिस्तान के मेहरगढ़ में तो गेहूं और जौ की प्रधानता रही, लेकिन मध्य भारत में चावल और दक्षिण भारतीय नवपाषाणकालीन स्थलों में बाजरा और रागी की खेती के साक्ष्य मिले हैं (जैन 2006: 78-79)।

अब तक एकत्र किए गए साक्ष्य-समूहों से संकेत मिलता है कि प्रत्येक प्रदेश अपनी विशेष भौगोलिक अवस्थिति के अनुरूप क्रियाशील था, लेकिन पूरी तस्वीर के अवलोकन से लगता है कि उनमें स्पष्ट समताएँ भी थी। कृषि के अभ्युदय और विकास तथा व्यवस्थित ग्राम्य जीवन का प्रारंभ इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। अगले भाग में हम पूरे देश के स्तर पर मानवीय जीवन-शैली में इस भारी परिवर्तन के स्वरूप और गति-विज्ञान को समझने का प्रयास करेंगे।

4.4 नवपाषाण संस्कृतियों का प्रादेशिक वितरण

4.4.1 उत्तर-पश्चिम भारत

पाकिस्तान में सिंधु के मैदान और बलूचिस्तान प्रांत से बना यह क्षेत्र उपमहादेश में नवपाषाणयुगीन संस्कृति का आद्यतम साक्ष्य प्रस्तुत करता है, जैसाकि वहाँ कृषि और पशुपालन के विकास से ज़ाहिर होता है। मूलतः एक बंजर और अतिशय सर्दी-गर्मी वाले जलवायु के इस पवर्तीय प्रदेश, बलूचिस्तान की घाटी के अंचलों में आरंभिक अधिवासों (आवास) के अनेक चिह्न मिले हैं। इनमें महत्वपूर्ण स्थल हैं- काची मैदान में मेहरगढ़, क्वेटा घाटी में किलीगुलमुहम्मद, लोरालाई घाटी में रानाघुंदाई और सुराबघाटी में अंजीरा।

सिंधु के मैदान अपने पुरातात्त्विक विन्यास में बलूचिस्तान के ठीक विपरीत हैं। इस क्षेत्र की जीवन-रेखा सिंधु नदी है जो बहुत ही अस्थिर है और बाढ़ वाले विस्तृत कछारी मैदान से होकर बहती है। नवपाषाण युग के स्थल पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के गुमला, रहमानढेरी, तारकाईकिला और सरायखोला में तथा पंजाब में जलिलपुर में मिलने लगते हैं।

मेहरगढ़

उपमहादेश में गेहूँ, जौ, ढोर, भेड़ और बकरियों पर आधारित कृषीय जीवन के आरंभिक साक्ष्य बलूचिस्तान के बोलन नदी के तट पर मेहरगढ़ के स्थल से प्राप्त हुए हैं। इसका सुविधाजनक काल-क्रम है- लगभग 7000 वर्ष ईसा पूर्व। अगली दो से तीन सहस्राब्दियों तक इस प्रकार की कृषि बलूचिस्तान तक सीमित प्रतीत होती है, हालांकि इस अवधि के अंत तक यह इसके बड़े भूभाग तक फैल जाती है (चक्रवर्ती 1999 : 117)।

नवपाषाण युग पर किसी भी विवेचना के लिए मेहरगढ़ की चर्चा अनिवार्य हो जाती है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि इसने इस घटना-विशेष के आद्यतम साक्ष्य प्रदान किए हैं, बल्कि यह भी है कि खुदाइयों के अन्तर-विषयक वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा परिणामों के नियमित प्रकाशन ने हमें वहाँ की नवपाषाणकालीन जीवन-पद्धति की बहुत ही साफ तस्वीर प्रदान की है।

इस स्थल पर खुदाइयाँ जे. एफ. जारिग के नेतृत्व में 1974 में शुरू की गयी और 1980 के दशक तथा उसके बाद भी चलती रही। इन खुदाइयों ने इस क्षेत्र के ग्राम्य जीवन के विकास और मजबूतीकरण में अबाधित निरंतरता का तत्त्व उजागर किया है। लगभग 200 हेक्टेयर भूमि पर फैला यह भव्यस्थल विभिन्न अवधियों के व्यवसाय का साक्ष्य प्रस्तुत करता है और इन अवधियों का नामकरण विभिन्न संख्याओं द्वारा किया गया है-जैसे, एम आर-1, एम आर-2, एम आर-3 इत्यादि। कुल मिलाकर सात अवधियां हैं जिनमें पहले तीन, 1, 2 और 3 ही नवपाषाणकालीन माने जाते हैं।

इनमें से प्रत्येक की समय-सीमा इस प्रकार है : अवधि I, ईसा पूर्व 7000-5500 वर्ष अवधि-II, ईसा पूर्व 5500-4500 वर्ष, और अवधि III, ईसा पूर्व 4500-3500 वर्ष।

व्यवसाय का आद्यतम स्तर जो अवधि I है, यायावरी पशुचारिता से कृषि कर्म की ओर संक्रमण का काल है। यह अवधि मृत्तिका-शिल्प कालीन थी, बल्कि इसमें पत्थर के औज़ार जैसे पॉलिशदार कुठार, छेनी, हाथ की चक्की और लघुपाषाणों (microlithic) तथा हड्डियों के औज़ार जैसे सुतारी, सूई इत्यादि काम में लाए जाते थे। नव पाषाण के लक्षण मवेशियों, भेड़ों और बकरियों की हड्डियों से भी परिलक्षित होते हैं। निश्चय ही ये पालतू रहे होंगे। यही बात भैसों जो उपमहाद्वीप में आद्यतम पशुपालन के उदाहरण हैं, की हड्डियों से भी सिद्ध होती है। पौधा-रोपण का साक्ष्य गेहूँ और जौ तथा भारतीय बेरों और खजूरों के झुलसे हुए बीजों से मिलता है। स्थानबद्धता की शुरूआत का पता कच्ची ईंटों से बने मकानों और छोटी कोठरियों के खंडों, जिनका उपयोग अन्न-भंडारण के लिए किया गया होगा, की नींवों से चलता है। लेकिन संभवतः सबसे आश्चर्यजनक सूचना लंबी दूरी वाले व्यापार और दस्तकारी के कामों से मिलती है। संभवतः ईरान के निशापुर की खानों से प्राप्त फ़िरोज़ा के मनके, अरब सागर के तट से सीप के कड़े और अफगानिस्तान के बाड़कशान क्षेत्र से लाजवर्द जैसे भारी माल के व्यापार के चिह्न पाए गए हैं। इससे साफ़ जाहिर होता है कि अवधि I में मेहरगढ़ के लोग अलग-थलग समुदायों के न होकर अन्य समकालीन संस्कृतियों के साथ आदान-प्रदान करते रहते थे।

अवधि II की मुख्य विशेषता आर्थिक आधार का तीव्रीकरण और वैविध्यकरण है। निम्नतर स्तरों पर कुछ हाथ से बने मिट्टी के पात्र पाए गए हैं जो इस अवधि में आगे चलकर भारी मात्रा में उपलब्ध हुए हैं। अवधि की समाप्ति के आसपास चाक से बने ऐसे बक्कल (sherds) पाए गए हैं जिनपर चित्रकारी, चक्र और डलिया के चिह्न हैं और जिनकी तुलना क्वेटा घाटी में किलीगुलमुहम्मद I से की जा सकती है। इस समय तक घर बड़े आकार के बनने लगे और इस स्थल पर एक संरचना को 'अन्न भंडार' की संज्ञा दी गयी है। पत्थर उद्योग जारी रहा और उसमें 'हँसिया' जैसे औज़ार जुड़ गए जिससे कृषि आधारित अर्थ-व्यवस्था की पुष्टि होती है। कपास उत्पादन और संभवतः कताई और बुनाई सूचित करने वाले कपास के झुलसे हुए बीज, हाथी दांत का निर्माण, पक्की मिट्टी से बनी लघु मूर्तियाँ, सिलखड़ी का कारखाना और फ़िरोज़ा तथा लाजवर्द के मनके- ये सभी मानव विकास के शिल्पकारी, व्यापार और सह-नवपाषाण युग को प्रमाणित करते हैं।

मेहरगढ़ में अवधि III, जिसका विस्तार ईसा पूर्व लगभग 4500 से 3500 वर्ष है, नव पाषाण दौर का अंतिम चरण है। कृषि और पशु पालन संबंधी क्रियाओं के सुदृढ़ीकरण के द्वारा अतिरिक्त उत्पादन होने लगा। भारी मात्रा में मिट्टी के बरतन पाए गए हैं जिनमें अधिकांश पर चित्रित भाव हैं और जो इस अवधि के उत्तर काल में किलीगुलमुहम्मद II और III से मिलते-जुलते हैं। फ़िरोज़ा और लाजवर्द के मनकों और शंखसीपी के टुकड़ों से लंबी दूरी के व्यापारिक पद्धति में निरंतरता का पता चलता है। कुठालियों में पाए गए धातु के चिह्न और धरातल पर प्राप्त तांबे के पदार्थों से संकेत मिलता है कि नवपाषाण युग में मेहरगढ़ के लोग तांबा गलाना जानते थे। इस अवधि के बड़ी संख्या में पाए जाने वाले सामूहिक क़ब्रों से ग्राम्य जीवन के सतत विकास की तस्वीर उभरती है और आबादी में बढ़ोतरी का संकेत मिलता है।

किलीगुलमुहम्मद

क्वेटा की घाटी में किलीगुलमुहम्मद का स्थल 1949-51 में जूनियर डबल्यू. ए. फ़ेयरसर्विस के नेतृत्व वाली अमेरिकी पुरातात्त्विक मिशन के द्वारा खोदा गया। व्यवसाय के प्रथम तीन स्तरों का श्रेय नवपाषाण युग को है। ईसा के लगभग 5,000 वर्ष पूर्व अथवा उससे पहले मृत्तिका विहीन स्थल के रूप में शुरू होने वाले इस स्थल के निवासी ठट्ठर और लेप वाले अथवा कच्चे मकानों में रहते थे। पशुओं, भेड़, बकरी और जंगली गदहों के अवशेष प्राप्त हुए हैं और औजारों में लघुपाषाणों के बने औज़ार, कुछ पिसाई करने वाले औज़ार, हड्डियों से बनी बेधनियाँ, स्पैचुला (रंग मिलाने का एक

औज़ार-विशेष) आदि भी पाए गए हैं। अवधि II से अवधि III तक का संक्रमण खुरदुरे, हाथ से बने और डलिया के चिह्न वाले मिट्टी के बरतन से पॉलिशदार चाक से बने, सरल ज्यामितिक अभिकल्प (design) वाले मृणपात्रों (मृदभांडों) की ओर का गमन काल है।

रानाघुंदाई

अनंबार घाटी में अवस्थित रानाघुंदाई बलूची पहाड़ियों और सिंधु के मैदान के बीच पारिस्थितिकीय अन्त:वर्ती प्रक्षेत्र में पड़ता है। रानाघुंदाई का सिलसिला ब्रिगेडियर ई. जे. रास द्वारा 1946 में संक्षिप्त खुदाइयों के बाद स्थापित किया गया था। अवधियाँ I-III नव पाषाण की हैं जो ईसा पूर्व 4500 से 3100 वर्ष तक रही। अवधि I के अवशेष एक अर्द्ध-यायावरी समुदाय की उपस्थिति प्रमाणित करते हैं और इसमें हाथ से बने सादे मिट्टी के बरतन, बैल, भेड़, बकरी जैसे पालतू पशुओं और संभवतः जंगली गदहों की अस्थियाँ पाई गयी हैं। पत्थर और हड्डी के बने हुए मिले-जुले औज़ारों के साजो-सामान, लघु-पाषाण वाली चिप्पियाँ, धरें और हड्डी की बेधानियाँ तथा छिद्र वाली सूइयाँ काम में लाई जाती थी।

गुमला

गोमल घाटी में गुमला का स्थल एक छोटे, एक एकड़ वाले शिविर के रूप में शुरू हुआ। अवधि I मृत्तिका-विहीन थी और उस समय छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े, पालतू पशुओं की हड्डियाँ और बड़े आकार वाले छिछले गड्ढे पकाने-भूनने के काम में लाए जाते थे। अवधि II में बड़े पैमाने पर चाक निर्मित व चित्रित मृणपात्र (मृदभांड) लघुपाषाण से बने औज़ार, सीमित मात्रा में तांबा, कांसा और पक्की मिट्टी के कड़े, खेल के मोहरे, खिलौना-गाड़ियाँ और पशुओं तथा औरतों की लघु आकृतियाँ बनाई जाने लगी।

रहमानढेरी

20 हेक्टेयर से भी अधिक भूमि पर फैला रहमानढेरी का बृहत स्थल नवपाषाण से कोटदीजी सभ्यता और अंततः सिंधु घाटी सभ्यता की ओर का स्पष्ट संक्रमण दर्शाता है। पंक और कच्ची ईंटों से बनी दीवाल वाला यह स्थल आरंभ से ही सुदृढ़ ढांचे वाला है। गेहूं, जौ, मछली और पालतू मवेशी, भेड़, बकरी इत्यादि के अवशेष लोगों के आहार का संकेत देते हैं। इस स्थल पर प्रथम अधिवास से ही मिट्टी के बरतन काम में लाए जाते थे और उनके अधिकांश नमूने कोट दीजी के स्वरूप और अभिकल्प वाले हैं। रहमानढेरी का निर्धारित तिथि विस्तार ईसा पूर्व लगभग 3400-2100 है।

अमरी

सिंध में हड़प्पा के पूर्व का एक प्रमुख स्थल है अमरी, जो सिंधु नदी से 2 किलोमीटर दाएँ कृष्ट (cultivated) कछारी मैदान के किनारे अवस्थित है। यहाँ अवधि I का प्रारंभ ज्यामितिक अभिकल्प वाले हस्त निर्मित लाल मटमैले मृदभांड, जो काले रंग से बने हैं और जिनमें प्रायः लाल रंग की भराई है, से होता है। लोग कच्ची ईंटों से बने मकान में रहते थे और उनके पालतू पशुओं, भेड़, बकरी और गदहे के अवशेष पाए गए हैं। इस स्थल से संग्रह किए गए अन्य पुरातात्त्विक अवशेष हैं- तांबे के टुकड़े, शंख, पक्की मिट्टी के कड़े, गुलेल के पत्थर और समानांतर किनारे वाली धारें। व्यवसाय का नवपाषाण युग, जो ईसा पूर्व चौथी सहस्राब्दी के आरंभ से लेकर मध्य तक शुरू होता है, का स्थान पहले तो एक मध्यावधि दौर और अंततः सिंधु घाटी सभ्यता का दौर ले लेता है।

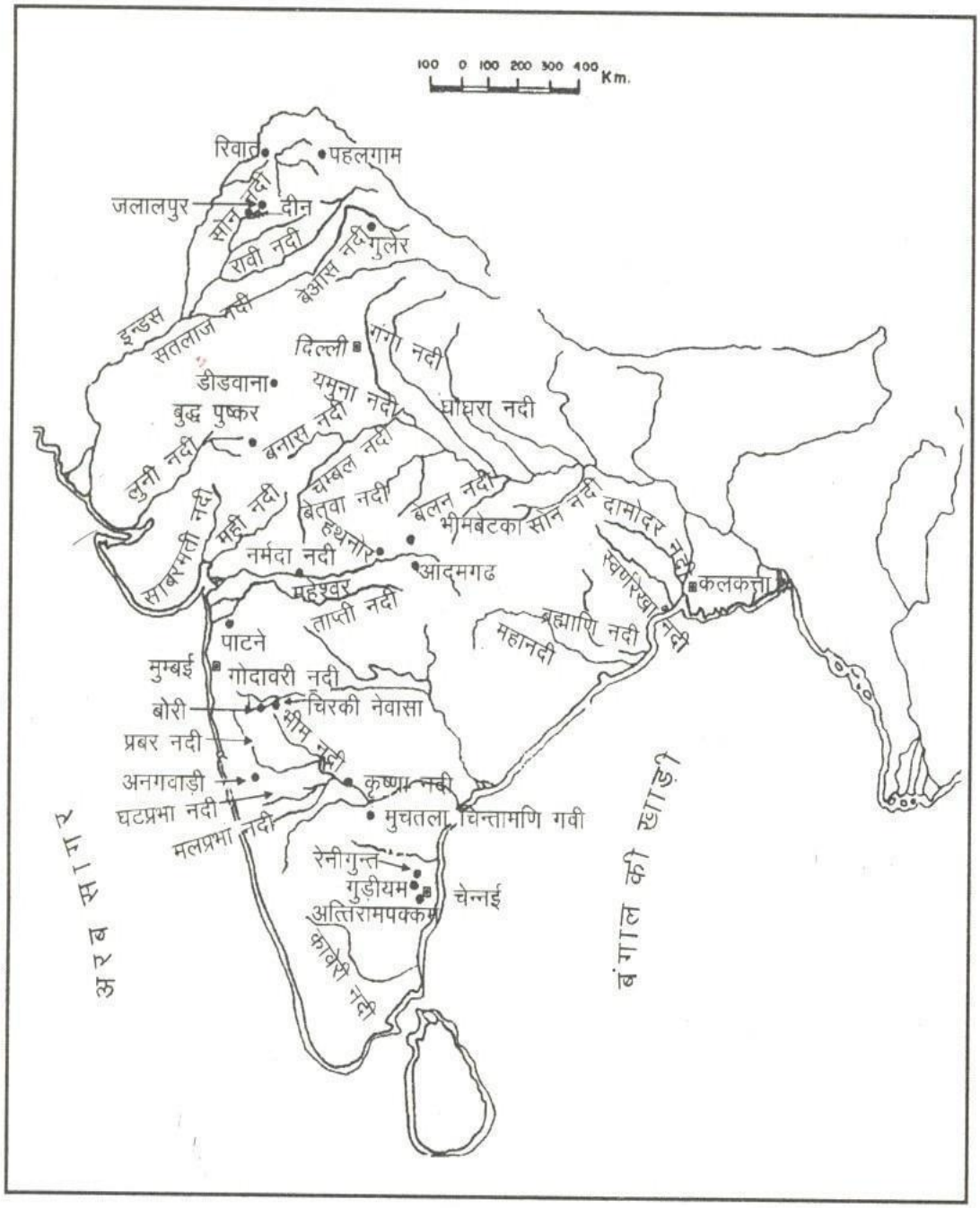

नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के प्रमुख स्थल

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास*, 2008)

4.4.2 उत्तर भारत

उत्तर भारतीय नवपाषाण संस्कृतियों का साक्ष्य मुख्य रूप से कश्मीर घाटी से प्राप्त हुआ है और झेलम नदी के जलाप्लावित मैदानों में बड़ी संख्या में प्राप्त स्थलों से यह स्पष्ट होता है। तीन प्रमुख स्थल हैं : श्रीनगर के उत्तर-पूर्व में बुर्जहोम, श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व में गुफ्कराल, और बाड़मूला जिले में कनिष्कपुर अथवा आधुनिक कनिष्पुर। ये तीनों बहु-संस्कृति वाले स्थल हैं, जहाँ बहुसंख्यक नवपाषाणीय अवशेष के बाद महापाषाण और ऐतिहासिक कालों के

साक्ष्य मिले हैं। उत्तरपाषाण की एक प्रमुख विशेषता है पूर्ववर्ती लघुपाषाण युग, मध्यपाषाण युग के दौर का अभाव और इस परिघटना का विकास ईसा पूर्व के 3500 और 1500 वर्ष के बीच हुआ था।

गुफ्कराल

गुफ्कराल का शाब्दिक अर्थ है 'कुंभकार की गुफा'। गुफ्कराल का स्थल मृत्तिका-पात्र विहीन काल (aceramic neolithic) के रूप में संभवतः ईसा के लगभग 3000 वर्ष पूर्व शुरू हुआ। अवधि IA से ऐसे वृहत निवास स्थानीय गर्त खोजे गए हैं जो भंडारण गर्तों और चौके-चूल्हों से घिरे हुए हैं और जिनके अन्न-गर्त तथा चौके-चूल्हों के इर्दगिर्द स्तंभ-छिद्र पाए हैं। पालतू भेड़ और छाग के साथ-साथ जौ, गेहूं और मसूर के अतिरिक्त जंगली भेड़, बकरी, हिरण, साकिन, भेड़िया और भालू के अवशेष शिकार से खाद्य-उत्पादन की अर्थव्यवस्था की ओर संक्रमण का संकेत देते हैं। पॉलिशदार पत्थर के औज़ार जिसमें बड़ी चक्की, अस्थि सींग के औज़ार, सेलखड़ी के मनके और एक पक्की मिट्टी की गेंद शामिल हैं, अन्य पुरातात्त्विक संग्रह हैं। IB और IC की अवधियों में नवपाषाण का दौर और गतिमान हो जाता है जिसमें हाथ से बने बगैर पॉलिशदार मृणपात्र के बाद चाक से बने मिट्टी के बरतन, बड़ी मात्रा में पत्थर की चक्कियाँ, कूटने के औज़ार, दोहरे छिद्रवाले हार्वेस्टर (फ़सल काटने की मशीन) के साथ-साथ पालतू भेड़, बकरी, ढोर, कुत्ता और सुअर काम में लाए गए।

बुर्जहोम

बुर्जहोम के नवपाषाणकालीन लोग लगभग 2700 ईसा पूर्व से झील के किनारे गोलाकार अथवा अंडाकार गर्त-निवासों में रहते थे, शिकार करते और मछली मारते थे तथा कृषि कार्य से भी परिचित थे। गर्त-निवास के पार्श्व (दीवाल) पंक (गीली मिट्टी) से पुते होते थे और बड़े गर्त में जाने के लिए निसेनियों और सीढ़ियों का इस्तेमाल करते थे। इन गर्त-निवासों के समीप पशुओं की हड्डियों, पत्थर और हड्डी से बने औज़ारों को रखने के लिए भंडार-गर्त पाए गए हैं। इस स्थल से अधिकांशतः खुरदुरे और हाथ से बने धूसर, पीले और लाल रंग के मृदभांड मिले हैं। बुर्जहोम का अस्थि उद्योग, जिसमें कांटेदार बर्छी, नुकीला यंत्र, वाणाग्र, भाले का जोड़, कटार इत्यादि शामिल थे, भारत में नवपाषाण संस्कृतियों का सर्वाधिक विकसित रूप था। इसकी एक अन्य ख़ास विशेषता थी दफन विधि। यहाँ आदमी और जानवरों विशेषकर कुत्तों की क़ब्रें पाई गयी हैं। पत्थर की पटियों पर शिकार के दृश्यों के चित्रण अथवा सूर्य और एक कुत्ते के चित्रण से अनुष्ठानिक कार्यों का संकेत मिलता है। ईसा पूर्व की लगभग दूसरी सहस्राब्दी में अवधि II की दो खोजों से सिंधु मैदानों के साथ इसके संपर्क का भी पता चलता है। ये दो खोजें हैं- कार्नेलियन (एक प्रकार का लाल, भूरा अथवा उजले रंग का रत्न जिससे जेवर बनते हैं) और गोमेद के दानों वाला एक बरतन तथा एक अन्य बरतन जिस पर कोट दीजी का सींगवाला देवता है।

कनिष्कपुर

कनिष्कपुर अथवा आधुनिक कनिष्पुर कश्मीर के बारामुल्ला ज़िले का विपुल-उत्पादक नवपाषाण और ऐतिहासिक स्थल है। इसकी खुदाई बी. आर. मणि द्वारा 1988-89 में हुई थी। नवपाषाण अवशेष के एन पी-1 और के एन पी-2 क्षेत्रों में खोदे गए जिनसे पता चलता है कि एक मृतिकाहीन नवपाषाण परत से पॉलिशदार प्रस्तर सेल्ट (एक प्रकार का काटने वाला औज़ार) का निर्माण हुआ था। नवपाषाणकालीन गतिविधियों के मजबूतीकरण का निष्कर्ष अवधि II के मृत्तिका नवपाषाण स्तर से निकाला जा सकता है। स्तंभ-छिद्रों के साथ चार क्रमिक फर्श स्तर के एन पी-1 में खुदाई से प्राप्त हुए। ये आयताकार घरों के हिस्से हैं जिनकी छतें संभवतः छाजन वाली थी। औज़ारों में पांच हड्डी वाली बेधनियां और छह पॉलिशदार प्रस्तर सेल्ट मिले हैं। हाथ और चाक दोनों से बने मिट्टी के बरतन पाए जाने तथा मध्यम से मोटी बनावट वाले उत्तम कोटि के भूरे मृणपात्र (मृदभांड), खुरदुरे भूरे मृदभांड, लाल मृदभांड और पॉलिशदार काले मृदभांड

इसके महत्वपूर्ण नमूने हैं। जौ मिलाकर गेहूं के उपभोग के साथ-साथ पालतू भेड़ और बकरी के साक्ष्य भी मिले हैं। रेडियो कार्बन के नए साक्ष्य से ज़ाहिर होता है कि अवधि I का समय ईसा के लगभग पाँचवीं सहस्राब्दी पूर्व और अवधि II का समय ईसा पूर्व चौथी सहस्राब्दी के देर तक रहा होगा।

4.4.3 मध्य भारत

मध्य भारतीय नवपाषाण का केन्द्र मोटे तौर पर उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के विंध्य और कैमूर की पर्वत श्रेणियां अर्थात वे इलाके हैं जिनकी परिधि पर उत्तर में गंगा नदी और दक्षिण में सोन नदी है। महत्वपूर्ण नवपाषाण स्थल हैं : इलाहाबाद जिला में कोल्डीहवा और महागारा, मिर्जापुर ज़िले में सिंदूरिया और मध्य प्रदेश के सिद्धि ज़िले में कुंजुन। इस क्षेत्र में नवपाषाण युग की तिथियों को लेकर समस्या रही हैं- कुछ विद्वानों के अनुसार कोल्डीहवा में नवपाषाण संस्कृति का अभ्युदय ईसा पूर्व लगभग 6000 वर्ष है, जबकि कुछ अन्य विद्वानों ने इसे ईसा पूर्व 4000 से 2500 वर्ष के बीच अथवा ईसा पूर्व 3500 से 1250 वर्ष के बीच माना है।

कोल्डीहवा

उत्तर प्रदेश के बेलन की घाटी में अवस्थित कोल्डीहवा के पास मध्यपाषाण युग तक समृद्ध प्रागैतिहासिक सिलसिला है। चावल के आद्यतम (पुर्णतः आरंभिक) साक्ष्य का दावा यह स्थल कर सकता है : ''घरेलू उपयोग के अनुकूलित चावल का आगमन कोल्डीहवा के धातु-मुक्त स्तर से होता है और यह ठट्ठर और लेप वाले गृहों, पॉलिशदार पत्थर के सेल्ट, अतिलघु प्रस्तरों तथा तीन प्रकार के हस्तनिर्मित बरतनों- रज्जू (रस्सी) चिह्नित व उत्कीर्ण बरतन, दोनों तरफ गैरिक पट्टी वाले बरतन और बिना पॉलिश वाले काले और लाल बरतन- का स्थल है। चावल की भूसी बरतन की मिट्टी में लगा दी गयी है (चक्रवर्ती 1999 : 205-207)। लघुपाषाण और नवपाषाण में तालमेल होने के साक्ष्य हैं- धारवाले औज़ार, शल्क, नव चन्द्राकार वस्तुओं के साथ-साथ पॉलिशदार और सान चढ़ा कुठार, सेल्ट, चक्कियाँ और मूसलें। पशुपालन का साक्ष्य पशुओं, भेड़, बकरी और हिरण की अस्थियों से मिलता है और मछली मारने का साक्ष्य समुद्री कच्छपों और मछलियों की अस्थियों से। जी. आर. शर्मा ने कोल्डीहवा में चावल की खेती का समय लगभग 5500 वर्ष ईसा पूर्व बतलाया है। एफ़. आर. आल्चिन और डी. के. चक्रवर्ती जैसे अन्य विद्वान मानते हैं कि नवीन साक्ष्यों के आधार पर इन तिथियों की फिर से जांच करने की ज़रूरत है। लेकिन इस बात पर सहमति है कि चावल की खेती एक देशज, हिम युग के बाद की परिघटना थी जो स्वतंत्र रूप से कोल्डीहवा और मध्य भारत में प्रारंभ हुई और जिसकी कालावधि ईसा पूर्व पाँचवीं सहस्राब्दी मानी जा सकती है।

महागारा

प्रायः कोल्डीहवा का समकालीन महागढ़ से हड्डियों से बने कुछ उपकरणों के साथ मध्यपाषाण और नवपाषाणकालीन कई औज़ार मिले हैं जो कैल सेडनी (एक मूल्यवान पत्थर), गोमेद, बिल्लौर और बैसाल्ट (असिताश्म) जैसे धातुओं से बने हैं। इस स्थल से पशुओं का एक बाड़ा मिलने की सूचना भी प्राप्त हुई है जिससे पशुओं के पालतू बनाए जाने का संकेत मिलता है। नवपाषाण युग के लोगों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले बरतन हाथ के बने व हलके आग में पकाए हुए होते थे और इनमें पुआल और चावल की भूसी जैसी सामग्रियाँ मिलायी जाती थीं। मुख्य मृदभांड रस्सी से बांधे अथवा चिह्नित किए जाते थे, हालांकि कहीं-कहीं उत्कीर्ण अभिकल्प वाले बरतन भी मिले हैं।

4.4.4 मध्य गंगा की घाटी

पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के क्षेत्रों को आच्छादित करने वाली मध्य गंगा की घाटी मुख्य रूप से सदानीरा गंगा नदी का दिग्दर्शन कराती है। गंगा अपने साथ सरजू और घाघरा जैसी अपनी सहायक नदियों के अपवहन को लेकर चलती

है। इसलिए स्वाभाविक ही है कि इस क्षेत्र के अधिकांश नवपाषाणकालीन स्थल नदियों के किनारे मिलते हैं, जैसे- नरहन सरजू नदी के तट पर, इमलीडीह कुवाना दरिया के तट पर, सोह-गौरा राप्ती नदी के तट पर और टेराडीह तथा सेनुवार जैसे अन्य स्थल। चिरांद जिसे इस क्षेत्र का प्रतिनिधि-स्थल माना जाता है, से ईसा पूर्व 2100 वर्ष से 1400 वर्ष तक के नवपाषाणकालीन सांस्कृतिक धरोहर प्राप्त हुए हैं।

चिरांद

एक किलोमीटर लंबा चिरांद का टीला सरजू और गंगा के संगम पर अवस्थित है और डा. चक्रवर्ती के अनुसार इस स्थल पर व्यवसाय का प्रारंभ ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी के मध्य से भी पहले हुआ होगा। अवधि I अथवा चिरांद के नवपाषाणकालीन निक्षेप से खुरदुरे मृणपात्र प्राप्त हुए हैं जो लाल, धूसर और काले रंग के हस्तनिर्मित पात्र हैं और उनमें से कुछ पर पकाए जाने के बाद के रंग-चित्र और भित्ति-चित्र मिलते हैं। पक्की मिट्टी से बनी अनेक वस्तुएँ, जिनमें कुबड़ा सांड, पक्षी, सांप के अतिरिक्त कड़े, मनके, ढेलवांस की गेंदे इत्यादि शामिल हैं, पाई गयी हैं।

वहाँ के लोग छिद्रवाले खंभे और चूल्हे-चौकों से युक्त ठट्ठर और लेप वाले कुटीरों में रहते थे। जीविका के लिए वे खेती और पशुपालन पर निर्भर थे। मुख्य फ़सलें थी चावल, गेहूं, जौ, मूंग और मसूर। इससे यह भी ज़ाहिर होता है कि वे साल में दो फ़सलें-शीतकालीन और शरतकालीन-उपजाते थे। जानवरों के अवशेषों में पालतू पशुओं से लेकर हाथियों और गैंडों की व्यापक श्रेणियां शामिल हैं।

कश्मीर में बुर्जहोम को छोड़कर देश में चिरांद अकेला अन्य स्थल है जहाँ भारी मात्रा में अस्थियों और मृगश्रृंगों से बनी वस्तुएँ जैसे-छेदक, खुरचनी, बेधक और वाणाग इत्यादि प्राप्त हुई हैं। अस्थियों से निर्मित आभूषण जैसे-पेंडेंट (गले में सिकड़ी से लटकता जेवर), कड़े और कर्णफूल भी पाए गए हैं। पत्थर से निर्मित औज़ारों में अतिलघु पाषाण से बने नवपाषाणकालीन कुठार और पत्थर के मूसल और चक्की जैसे अन्य उपकरण शामिल हैं। गोमेद, कार्मेसियन, सूर्यकांत, सेलखड़ी ,अलंकृत मृणपात्र तथा ऊपर में वर्णित पक्की मिट्टी अस्थि और मृगश्रृंग के बड़े ढेर से शिल्पी उत्पादन और संभवतः वस्तुओं के विनिमय की ओर गमन का संकेत मिलता है।

4.4.5 पूर्वी भारत

पूर्वी भारत में झारखंड, पश्चिमी बंगाल और बिहार राज्य शामिल हैं। यहाँ से प्राप्त नवपाषाणीय अवशेष एक समृद्ध प्रागैतिहासिक अतीत की जानकारी देते हैं। महत्वपूर्ण स्थल हैं- ओड़ीसा में कुचई और गोलबई सासान, पश्चिम बंगाल में पांडु रजार ढिबी, भरतपुर और महिषदल और झारखंड में बारुडीह। चूंकि खुदाइयों के गंभीर प्रयास नहीं हुए हैं, नवपाषाणयुगीन जीवन-पद्धति का एक आज़माइशी खाँचा ही खींचा जा सकता है और उसका तिथि-निर्धरण भी संदिग्ध ही है।

कुचइ

ओड़ीसा में मयूर भंज के समीप कुचई में नवपाषाण स्तर के अस्तित्व की स्थापना सेल्ट और कुठार जैसे पॉलिशदार प्रस्तर उपकरणों के आधार पर की गयी है।

गोलबई सासान

मंदाकिनी नदी के दाएँ किनारे पर अवस्थित गोलबई सासान के स्थल की खुदाई 1990-92 के बीच हुई। इस स्थल पर अवधि II नवपाषाणीय है और अनेक हल्का लाल और धूसर रंग के हस्तनिर्मित मिट्टी-पात्र मिले हैं। इन पात्रों पर रस्सी

अथवा कछुए की खोपड़ी की छापों के साथ हड्डियों के काम किए गए टुकड़े और फर्श तथा स्तंभ-छिद्रों के निशान प्राप्त हुए हैं (चक्रबर्ती 1999:239)।

पांडु रजार ढिबी

अजय घाटी में पांडु रजार ढिबी पहला स्थल है जो बाद के ताम्रपाषाण काल जैसे विकास क्रम का नवपाषाणीय आधार दर्शाता है। इस स्थल की खुदाइयाँ अवधि I को नवपाषाणीय दौर के पेशे से जोड़ती हैं। इसकी विशेषताएँ हैं- हस्तनिर्मित धूसर बरतन, जिन पर चावल की भूसी की छाप हैं, चित्रित लाल मृदभांड, काले और लाल पात्रों के टुकड़े, पिसाई वाले पत्थर के उपकरण अत्यंत लघु प्रस्तर खंडों और अस्थियों के औज़ार। लघुपाषाण-कणों और पिसे हुए प्रस्तर तथा अस्थि के उपकरणों का सह-अस्तित्व एक अंतर्निहित मध्यपाषणीय आधार-स्तंभ से नवपाषाण का अभ्युदय दर्शाता है।

बारूडीह

झारखंड राज्य मुख्य रूप से छोटानागपुर पठार की वर्तुल रेखाओं में सिमटा है। इस पठार में ग्राम स्तर पर नवपाषाण काल की पहली पुरातात्त्विक पहचान बारुडीह में मिली। उसी स्तर से पुरातत्त्व-शास्त्रियों ने लघु-पाषाण के कण, नवपाषाणीय सेल्ट, लौह व चून उपकरण तथा विभिन्न प्रकार के चक्र निर्मित मृदभांड प्राप्त किए हैं जिनमें लाल और कृष्ण वर्ण के भांड महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। यह स्थल ईसा पूर्व 1401 से 837 वर्ष के बीच का है (चक्रवर्ती 1999 : 243)।

4.4.6 उत्तर-पूर्वी भारत

संपूर्ण उत्तर-पूर्वी क्षेत्र से प्रचुर मात्रा में पॉलिशदार नवपाषाणीय उपकरण प्राप्त हुए हैं लेकिन अब तक नवपाषाणीय स्तर की कोई सुदृढ़ तस्वीर नहीं उभर पाई है। स्कंधित कुठारों और रस्सी छाप वाले मृदभांडो जो चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के मृदभांडो से बहुत मेल खाते हैं, के कारण कुछ विद्वान नवपाषाण का विस्तार दक्षिण-पूर्व एशिया से आयातित मानते हैं। इस कड़ी के आधार पर डी. पी. अग्रवाल ने उत्तर-पूर्व भारत की नवपाषाणकालीन संस्कृतियों की अवधि ईसा पूर्व 2500 से 1500 वर्ष के बीच मानी है (अग्रवाल 2002 : 201)। इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण स्थल हैं-असम में दाओजलि हादिंग और सारुतारु, मणिपुर में नापचिक और मेघालय में प्यनथोलातेंग।

दाओजलि हादिंग

असम की उत्तरी कछार की पहाड़ियों में अवस्थित दाओजलि हादिंग में एक 45 सेंटीमीटर गहरा पेशे से संबंधित निक्षेप का पता चला है। इस स्थल से नवपाषाणकालीन पत्थर और जीवाश्म, काठ के बने कुठार, वसूला, फावड़ा, छेनी, पीसने की पटिया, चक्की, सिलौट, हस्तनिर्मित फीके लाल रस्सियों की छाप वाले मृणपात्र (मृदभांड) समेत फीके लाल मुहर वाले मृणपात्र और सादे लाल रंग के मृणपात्र मिले हैं। घरेलू अनाज तो नहीं पाए गए हैं, लेकिन शिल्प-तथ्यों के रंग पटल पर सिलौट और चक्कियों की मौजूदगी से कृषि-संबंधी गतिविधियों का चलन प्रमाणित होता है।

4.4.7 दक्षिण भारत

कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में विस्तीर्ण दक्षिण भारतीय नवपाषणीय संस्कृति पत्थर की सहज उपलब्धता के कारण नवपाषाणकालीन अधिवासों (आश्रयों) की सबसे बड़ी संख्या दर्शाती है। इस संस्कृति का भौगोलिक भू-भाग उत्तर में भीमा नदी और दक्षिण में कावेरी नदी से घिरा हुआ है और स्थलों का प्रधान केन्द्रीयकरण रायचूर और शोरापुर दोआब में है। स्थलों की बहुलता के अतिरिक्त दक्षिण भारत के नवपाषाण काल को विलक्षण बनाने वाला एक अन्य

तत्त्व है राख के टीलों से स्राव और क्षेत्र की सपाट ऊपरी परत वाली व कंगूरेदार ग्रेनाइट की पहाड़ियों तथा पठारों पर आश्रय की स्थिति। ये राख के टीले जली हुई पशु-विष्ठा (cattle dung) के विशाल टीले हैं जो जलने के परिणामस्वरूप संचित हो गए हैं। एफ. आर. अलिचन ने 1960 में इसकी उत्पत्ति पश्चिम एशिया में बतलाई है (जैन 2006 : 92-94)। लेकिन, अब उसके उद्भव और विकास को उससे पूर्व की देशज प्रस्तर-परंपरा के संदर्भ में देखा जाता है।

इस क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण नवपाषाणीय स्थल हैं : कर्नाटक में सनगन कल्लू, हल्लूर, टेक्कालाकोटा, ब्रह्मगिरि, मास्की, टीनर्सिपुर और पिकलीहाल, आंध्र प्रदेश में उतनूर, पालावो, कोडेकाल और बुदिहल और तमिलनाडु में पैयमपल्ली। इन स्थलों का काल ईसा पूर्व 2400 वर्ष से 1000 वर्ष के बीच का है।

सरिताओं अथवा नदियों के कारण पानी की निरंतर सुलभता, पशुओं के लिए चारागाह तथा पत्थर और काष्ठ जैसे कच्चे माल की उपलब्धता ने नवपाषाणीय अधिवासों को प्रेरित किया होगा। शिविर तथा निवास स्थान दोनों प्रकार के स्थल वहाँ पाए गए हैं जहाँ लोग ठट्ठर और लेप वाले वर्तुलाकार कुटीरों में रहते थे। लगभग सभी कुटीरों में चूल्हे-चौके और भंडार गृह पाए गए हैं। जीविका मुख्यतः प्रारंभिक कृषि और पशु पालन की मिश्रित अर्थव्यवस्था पर निर्भर थी। ज्वार, बाजरा, जौ, कुलथी, मूंग व उड़द के झुलसे हुए दाने पाए गए हैं। पूर्व में विद्वानों की राय थी कि ज्वार बाजरा दक्षिण अफ्रीका से आया होगा लेकिन हाल के शोध इस परिकल्पना का निषेध करते हैं और इन फसलों के देशज विकास का समर्थन करते हैं। मछली की हड्डियों और पशुओं की झुलसी और टूटी हुई हड्डियों से पता चलता है कि मछली मारने और शिकार करने से आहार की आवश्यकताएँ बहुत हद तक पूरी हो जाती थी।

सनगनकल्लू

सनगनकल्लू एक ऐसे सुदीर्घ व्यवसाय की तस्वीर प्रस्तुत करता है जिसकी शुरूआत पुरापाषाण युग के दौर से होती है। पुरापाषाणीय व्यवसाय के बाद बिल्लौर के परतीदार औज़ार और नवचंद्राकार औज़ार (lunate) का लघुपाषाणीय उद्योग का काल आता है। इस क्रम में पॉलिशदार प्रस्तर के उपकरण वाले उद्योग की प्रमुखता होती है, लेकिन ऐसा तभी होता है जब स्थल पर गहरी भरी मिट्टी बिछ जाती है जिससे नवपाषाण और आरंभिक लघुपाषाण के स्तरों के बीच समय के अंतराल का संकेत मिलता है (चक्रवर्ती 1999 : 236)। स्थल पर खुरदूरे धूसर, लाल मृणपात्र मिले हैं जो या तो हस्तनिर्मित हैं या धीमी गति वाले चाक पर बने हैं। भंडारण-गर्तों के अवशेष के रूप में ढोर, भेड़ और बकरी जैसे पालतू पशुओं की अस्थियाँ और झुलसे अनाज के दाने प्राप्त हुए हैं।

पिकलीहल

पिकलीहल का स्थल वस्तुतः राख का एक टीला है जो कर्नाटक के रायचूर ज़िले में है। यहाँ रहने वाले नवपाषाण युग के लोग गाय, बैल, भेड़, बकरी इत्यादि मवेशियों को पालते थे। ये लोग यायावर थे जो काठ के खंभों और खूंटों से निर्मित गाय के बाड़ों से घिरे मौसमी छावनियां बनाकर रहते थे। इन बाड़ों में वे गोबर-लीद जमा करते थे। जब घूमने का समय आता था तो छावनी वाली पूरी जमीन पर आग लगा दी जाती थी और अगले सत्र की छावनी के लिए उसे साफ कर दिया जाता था।

4.5 उपसंहार

उपमहाद्वीप में नवपाषाणीय संस्कृतियों के विस्तार और विविधता का सामान्य अवलोकन हमें उन वृहत्तर और स्थानीय गतिविधियों को समझने में मदद करता है जिन्होंने इस परिघटना को जन्म दिया। निश्चय ही कुछ स्थलों पर प्राप्त लघुपाषाणीय अवशेष नवपाषाण के पूर्व के हैं लेकिन अन्य अवशेष पूर्ण विकसित नवपाषाणीय दौर के मौन साक्ष्य

प्रस्तुत करते हैं। तथापि, ईसा पूर्व की पाँचवीं और पहली सहस्राब्दियों के बीच पूरे देश के लोग नवपाषाणीय संस्कृति-व्यवस्थित कुटिया, कृषि और पशुपालन, मृदभांड और शिल्प-उत्पादन की ओर अग्रसर हो रहे थे। लेकिन मानव के सांस्कृतिक विकास की कहानी यहीं पर समाप्त नहीं हो गयी, क्योंकि यह तो मात्र वह आधारशिला थी जिस पर बड़ी सभ्यताएँ खड़ी होनी थी।

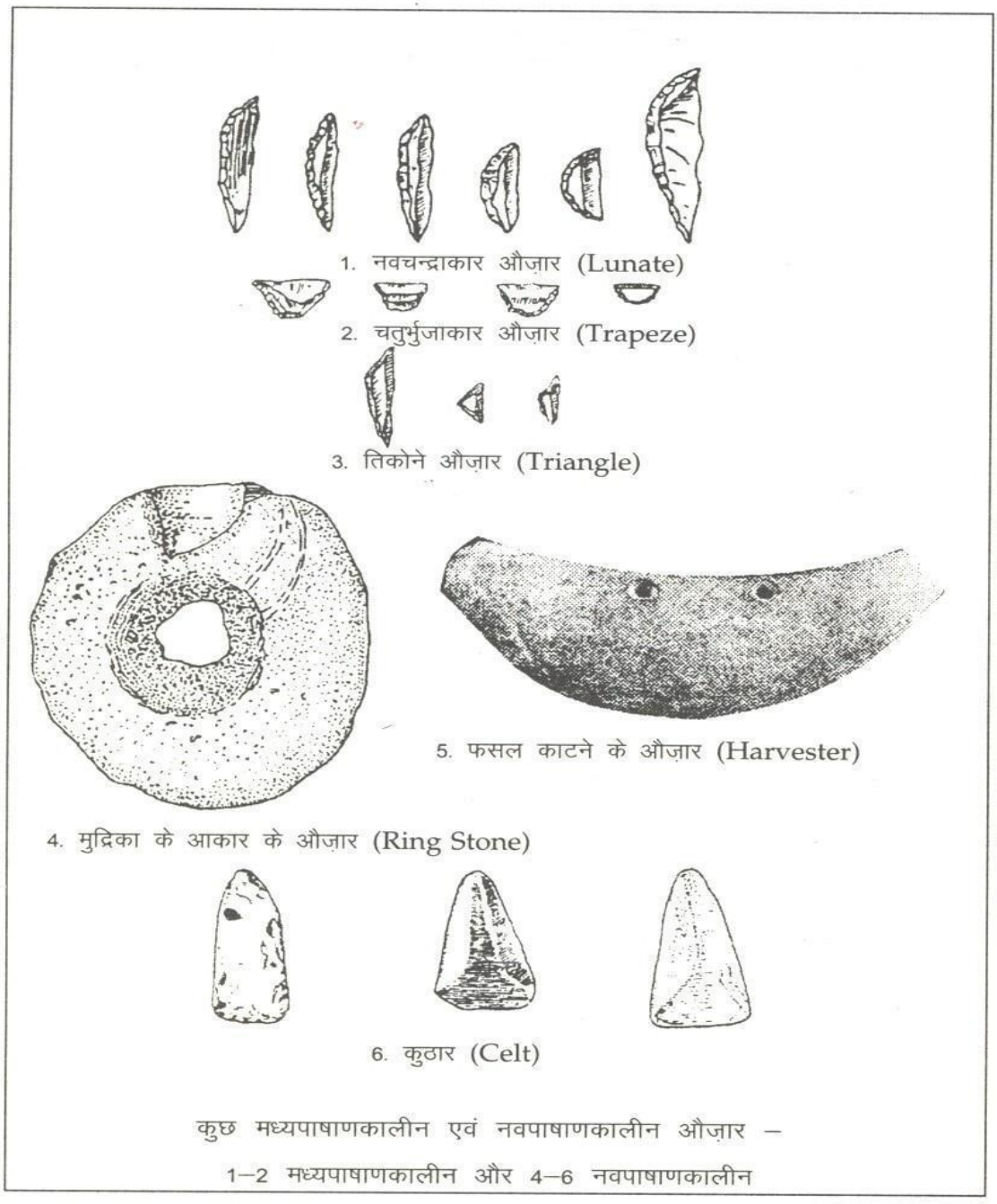

कुछ मध्यपाषाणकालीन एवं नवपाषाणकालीन औज़ार –
1–2 मध्यपाषाणकालीन और 4–6 नवपाषाणकालीन

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास*, 2008)

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. निम्नलिखित प्रदेशों के दो-दो नवपाषाणकालीन स्थलों के नाम बताएँ:

(i) उत्तर-पश्चिम भारत (ii) उत्तर भारत (iii) मध्य भारत (iv) मध्य गंगा नदी घाटी (v) पूर्वी भारत (vi) उत्तर-पूर्वी भारत (vii) दक्षिण भारत

ख. दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न:

(i) नवपाषाण काल के अभिलक्षणों और इसके स्वतंत्र विकास जिसने भारत में खाद्योत्पादन की आधारशिला रखी पर चर्चा करते हुए एक निबंध लिखिए। साथ ही खाद्योत्पादन की विकीर्णवादी धारणा (diffusionist paradigm) की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।

4.6 सारांश

- नवपाषाण युग जो मध्यपाषाण युग के बाद की और पाषाणयुग की अंतिम अवस्था है, में खाद्य-उत्पादन का श्रीगणेश हुआ।
- नवपाषाणकालीन औज़ारों में मूसल, खरल, चक्की जैसे कूटने-पीसने वाले भारी औज़ारों के साथ-साथ कुठार और हँसिया जैसे चमकदार औज़ार भी शामिल थे।
- नवपाषाणकालीन लोग खाद्य-उत्पादन के लिए कृषि और आहार संबंधी जरूरतों के लिए पशुपालन पर निर्भर थे।
- भारत में सर्वत्र नवपाषाण काल का विकास एक साथ नहीं हुआ और न ही इनका अंत एक साथ हुआ।
- तथापि, ईसा पूर्व की पाँचवीं और पहली सहस्राब्दियों के बीच पूरे देश के लोग नवपाषाणीय संस्कृति- व्यवस्थित कुटिया, कृषि और पशुपालन, मृदभांड और शिल्प-उत्पादन की ओर अग्रसर हो रहे थे।

प्रगति जाँच अभ्यासों के उत्तर

प्रगति जाँच अभ्यास 1

क. संक्षिप्त टिप्पणी:

(i) देखें खंड 4.2

(ii) देखें उप-खंड 4.2.1

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. (i) मेहरगढ़, गुमला; (ii) बुर्जहोम, कनिष्कपुरा; (iii) कोल्डीहवा, महागारा; (iv) चिरांद, इमलीडीह; (v) कुचइ, पांडु रजार ढिबी; (vi) दाओजलि हादिंग, नापचिक; (vii) ब्रह्मगिरि, उतनूर

ख. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

ख. दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न:

(i) देखें खंड 4.3